أعوذُ بِٱللَّهِ مِنَ ٱلشَّيۡطَٰنِ ٱلرَّجِيم بِسْمِ اللَّـهِ الرَّحْمَـٰنِ الرَّحِيمِ

حقیقت و اقسامِ شرک

ڈاکٹر اسرار احمد رحمۃ اللہ علیہ

صدر مؤسس انجمن خدام القرآن و بانی تنظیم اسلامی

शिर्क की वास्तविकता और उसके प्रकार

डॉक्टर इसरार अहमद (रहमतुल्लाह अलैह)

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَٰنِ الرَّحِيمِ

إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَن يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ ۚ وَمَن يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدِ افْتَرَىٰ إِثْمًا عَظِيمًا ﴿٤٨﴾

“बिला शुबाह अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ यह बात तो कभी माफ़ नहीं करेगा कि उसके साथ किसी को शरीक ठहराया जाए और इसके अतिरिक्त जिस क़द्र गुनाह हैं, वह जिसके लिये चाहेगा, माफ़ करेगा। और जिसने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ किसी और को शरीक ठहराया तो उसने एक बड़ा झूठ घड़ लिया।” (अननिसा : 48)

إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَن يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ ۚ وَمَن يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلَالًا بَعِيدًا

“निस्संदेह अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ इस चीज़ को क्षमा नहीं करेगा कि उसके साथ किसी को शामिल किया जाए। हाँ, इससे नीचे दर्जे के अपराध को, जिसके लिए चाहेगा, क्षमा कर देगा। जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ किसी को साझी (शरीक) ठहराता है, तो वह भटककर बहुत दूर जा पड़ा” (अननिसा : 116)

وَإِذْ قَالَ لُقْمَانُ لِابْنِهِ وَهُوَ يَعِظُهُ يَا بُنَيَّ لَا تُشْرِكْ بِاللَّهِ ۖ إِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيمٌ ﴿١٣﴾

याद करो जब लुकमान ने अपने बेटे से, उसे नसीहत करते हुए कहा, "ऐ मेरे बेटे! अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का साझी (शरीक) न ठहराना। निश्चय ही शिर्क बहुत बड़ा ज़ुल्म है।"। (लुकमान: 13)

चंद तम्हीदी बातें

“हक़ीकत व इक़्सामे शिर्क” के मौज़ूअ पर यह मुफ़स्सिल मज़मून होगा। क्या अजब कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ इस कोशिश के ज़रिये से उम्मते मुस्लिमा में हक़ीक़ते शिर्क के बारे में सहीह फ़हमो शऊर पैदा फ़रमाए और इस ज़िमन में हम से कोई मुफ़ीद ख़िदमत क़बूल फ़रमा ले ! इब्तिदाअन मुझे इस मौज़ूअ से मुताल्लिक़ कुछ तम्हीदी बातें गोश गुज़ार करनी हैं। सबसे पहली बात यह है कि हमारे दीन की हक़ीक़त को अगर एक लफ़्ज़ में ताअबीर करने की कोशिश की जाए, या दूसरे शब्दों में इसकी तालीम के लुब्बे लुबाब और ख़ुलासे को एक लफ़्ज़ में बयान किया जाए तो वो लफ़्ज़ “तौहीद” है। हमारा दीन दरअस्ल “दीने तौहीद” है। यही वजह है कि अल्लामा इक़बाल ने तौहीद को ही वो अस्ल अमानत क़रार दिया है जो मुसलमानों का तुराहे इम्तियाज़ है:

तौहीद की अमानत सीनों मे है हमारे
आसान नहीं मिटाना नाम व निशां हमारा!

और जवाबे शिक्वा में भी नबी ए अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के मिशन को अल्लामा इक़बाल ने इसी एक लफ़्ज़ “तौहीद” से तअबीर किया है:

वक़्ते फ़ुर्सत है कहां काम अभी बाक़ी है
नूरे तौहीद का इत्माम अभी बाक़ी है!

तो हमारा दीन अस्ल में तौहीद है। “तौहीद” की ज़िद है “शिर्क”। शिर्क चाहे सनवियत (दो ख़ुदा का अक़ीदा) की शकल में हो, तस्लियत (तीन ख़ुदा का अक़ीदा) की शकल में हो या कसरते इलाह (बहुदेववाद) की सूरत में हो, इन सब सूरतों को हम एक ही लफ़्ज़ “शिर्क” से ताअबीर करते है। और जब यह बात तय है कि हमारा दीन, दीने तौहीद है तो उसका लाज़मी नतीजा यह निकलता है कि इस दीन में सबसे बड़ा जुर्म और सबसे बड़ा गुनाह, जो नाक़ाबिले दरगुज़र है (जो क्षमा योग्य नहीं है) , वो शिर्क है। चुनांचे यही बात सूरतुन्निसा में दो मर्तबा बईना इन्ही अल्फ़ाज़ में वारिद हुई है:

إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَن يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ ۚ

“यक़ीनन अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ यह बात तो हरगिज़ माफ़ नहीं करेगा कि उसके साथ शिर्क किया जाए, अलबत्ता इससे कमतर गुनाह जिसको चाहेगा बख़्श देगा”। (सुरह अन्निसा : आयत 48 व 116)

अगरचे इस आयत को दूसरे गुनाहों के ज़िमन में कोई खुला लाइसेंस नहीं समझ लेना चाहिए, अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का कोई पुख़्ता वादा और यक़ीन दहानी नहीं है कि वो दूसरे गुनाह लाज़िमन बख़्श देगा, बल्कि لِمَن يَشَآءُ के अल्फ़ाज़ हैं, जिसके लिए चाहेगा बख़्श देगा। लिहाज़ा यह हरगिज़ नही समझा जाए कि हमें खुली छुट्टी मिल गई है कि हम शिर्क के सिवा जिस गुनाह में चाहें मुलव्विस हो जाए, कोई मुवाख़िज़ा नहीं होगा। ताहम उम्मीद ज़रूर दिलाई गई है कि अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के नज़दीक कोई सूरत शिर्क की माफ़ी की नहीं है, अलबत्ता उससे कमतर गुनाह जिसको चाहेगा, अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ माफ़ फ़रमा देगा। बहरहाल मालूम हुआ कि हमारे दीन में सबसे बड़ा गुनाह, सबसे बड़ा जुर्म, जो नाक़ाबिले दरगुज़र है, वो शिर्क है। इसकी हक़ीक़त को यूं समझिये कि अज़रूऐ क़ुरआन सबसे बड़ा ज़ुल्म शिर्क है। बल्कि क़ुरआन मजीद में जहां भी लफ़्ज़ "ज़ुल्म" आता है, अगर सियाक़ व सिबाक़ (सन्दर्भ) से इसके कोई और माअना (अर्थ) निर्धारित नही हो रहे हों तो वहां इसका माअना "शिर्क" है और इसे ऐतबार से "ज़ालिमीन" का माअना(अर्थ) "मुशरिकीन" है। चुनांचे आयत ज़ेर गुफ़्तगू में यह हक़ीक़त बयान हुई إِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيمٌ "वाक़्या यह है कि शिर्क बहुत बड़ा ज़ुल्म है।"

अरबी ज़बान में ज़ुल्म का मतलब है وَضْعُ الشَّيْءِ فِيْ غَيْرِ مَحَلِّهٖ: "किसी चीज़ को उसके असली मक़ाम से हटाकर किसी और जगह रखना।" अदल और इंसाफ़ यह है कि हर चीज़ को उसके असल मक़ाम पर रखा जाए, जबकि ज़ुल्म यह है कि किसी वस्तु को उसके असल स्थान से हटा कर कहीं और रख दिया जाए। अब शिर्क में भी इन दो में से कोई एक सूरत होती है कि या तो मख़्लूक़ात में से किसी को उठा कर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के बराबर बिठा दिया जाता है। यह وَضْعُ الشَّيْءِ فِيْ غَيْرِ مَحَلِّهٖ: की एक सूरत है। और या फिर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ को نَعُوْذُبِالله गिरा कर मख़लूक़ात की सफ़ में लाया जाता है और यह وَضْعُ الشَّيْءِ فِيْ غَيْرِ مَحَلِّهٖ: की दूसरी सूरत है। तो मालूम हुआ के "ज़ुल्म" का सबसे बड़ा मिसदाक़ "शिर्क" है।

एक मरतबा सहाबा-ए-किराम رَضِيَ اللّٰهُ عَنْهُ ने सूरतुल अनआम की आयत 83

الَّذِينَ آمَنُوا وَلَمْ يَلْبِسُوا إِيمَانَهُم بِظُلْمٍ أُولَٰئِكَ لَهُمُ الْأَمْنُ وَهُم مُّهْتَدُونَ

के हवाले से नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से "ज़ुल्म" के बारे में मालूम किया तो आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने सूरह लुक़्मान की ज़ेरे बहस आयत 13

وَإِذْ قَالَ لُقْمَانُ لِابْنِهِ وَهُوَ يَعِظُهُ يَا بُنَيَّ لَا تُشْرِكْ بِاللَّهِ ۖ إِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيمٌ का हवाला देकर फ़रमाया कि यहां ज़ुल्म से मुराद शिर्क है। जब सूरतुल अनआम की यह आयत नंबर 81 नाज़िल हुई

فَأَيُّ الْفَرِيقَيْنِ أَحَقُّ بِالْأَمْنِ ۖ إِن كُنتُمْ تَعْلَمُونَ

हज़रत इब्राहीम عَلَيْهِ السَّلَام ने पूछा कि ऐ मुशरिकों अगर तुम जानते हो तो ज़रा बताओ कि दोनों गिरोहों में (मवाहहिदीन और मुशरिकीन) में से कौन अमन व सुकून और इतमिनान का ज़्यादा हक़ादार है ?

एक गिरोह मवाहहिदीन का था और एक मुशरिकीन का। एक तरफ़ सिर्फ़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के मानने वाले थे और दूसरी तरफ़ वो थे जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ दूसरे बहुत से माबूदों को मानने वाले थे। लिहाज़ा पूछा गया कि इनमें से हक़ीक़ी ज़हनी सुकून और हक़ीक़ी क़लबी इतमिनान का ज़्यादा मुस्तहिक़ कौन है ? यह सवाल करने के बाद क़ुरआन मजीद अपने एक आम असलूब के मुताबिक़ ख़ुद जबाव देता है

الَّذِينَ آمَنُوا وَلَمْ يَلْبِسُوا إِيمَانَهُم بِظُلْمٍ أُولَٰئِكَ لَهُمُ الْأَمْنُ وَهُم مُّهْتَدُونَ

जो लोग ईमान लाए और अपने ईमान को किसी ज़ुल्म से मुलव्विस नही करें, हक़ीक़त में अमन व सुकून (और इतमिनान) के मुस्तहिक़ वहीं हैं और वही हिदायत याफ़्ता हैं।

यानी जो अपने ईमान के साथ ज़ुल्म का कोई शाएबा पैदा न होने दें। इस पर सहाबाऐ कराम رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ में तश्विश पैदा हुई कि अगर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के यह वाअदे मशरूत हैं कि ईमान के साथ ज़ुल्म की क़तअन आमेज़िश न हो, तो ऐसा कौन शख़्स होगा जो किसी न किसी दर्जे में दूसरों पर या अपने उपर ज़ुल्म न करता हो। ग़ौर किजिए कि अगर आपने अपने वक़्त का लम्हा भी ज़ाया किया तो यह भी अपने ऊपर ज़ुल्म है। तो ज़ुल्म से बिल्कुल बरी और पाक हो जाना किसी फ़र्दे बशर के लिए मुम्किन नहीं है। चुनांचे सहाबाऐ कराम رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ ने नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के सामने अपनी तश्वीश को ज़ाहिर किया कि हुज़ूर صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ! ऐसा शख़्स कौन होगा जो ज़ुल्म से बिल्कुल बरी हो। इस पर नबी- ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने तसल्ली दी कि इस आयते मुबारका में ज़ुल्म से मुराद शिर्क है। और आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने सूरह लुक़्मान की इसी आयत का हवाला दिया कि तुमने यह आयत नहीं पढ़ी:

وَإِذْ قَالَ لُقْمَانُ لِابْنِهِ وَهُوَ يَعِظُهُ يَا بُنَيَّ لَا تُشْرِكْ بِاللَّهِ ۖ إِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيمٌ ﴿13﴾

तो यह मतलब हुआ कि जो लोग ईमान लाऐं इस शान के साथ के शिर्क की कोई आमेज़िश नही रहे तो वो हैं कि जो अमन के मुस्तहिक़ होंगे और वही हैं कि जो हिदायत पर हैं और अपनी आख़री मंज़िले मुराद तक पहुंच सकेंगे।

अब मै इसी का अक्स (converse) आपके सामने रख रहा हूं। जब हमारा दीन, दीने तौहीद है तो इस तस्वीर का दूसरा रुख़ यह हुआ कि सबसे बड़ा और नाक़ाबिले माफ़ी जुर्म और सबसे बड़ा ज़ुल्म शिर्क है। क़ुरआन मज़ीद में कई जगहों पर हज़रत इब्राहीम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ का ज़िक्र आता है। आप صَلَّىٰ ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की जलालते क़द्र और मक़ाम व मर्तबा का यह आलम है कि आप عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ तीन तीन निस्बतें हैं और तीनों ही निहायत बुलंद हैं। एक निस्बत अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ यह है कि आप صَلَّىٰ ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ "ख़लीलुल्लाह" हैं। और हज़रत इब्राहीम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ का ,यही वो रिश्ता है, अपने रब के साथ है जिसकी क़ुरआन अहतमाम के साथ वज़ाहत कर रहा है

وَاتَّخَذَ اللَّهُ إِبْرَاهِيمَ خَلِيلًا

और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इब्राहीम को अपना ख़लील बना लिया (अन्निसा : 125)

हज़रत इब्राहीम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की दूसरी निस्बत रसूलों और नबियों के साथ है, और वो यह कि आप عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ "अबुल अम्बिया" हैं। सैकड़ो जलीलुलक़द्र पैग़म्बर आप صَلَّىٰ ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की नसल में गुज़रे हैं। हज़रत मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ, ईसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ और मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّىٰ ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ इब्राहीम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की नस्ल में से हैं। इनमें से ईसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ अगरचे बिना बाप के पैदा हुए, लेकिन इनकी वालिदा मरयम (सलामुन अलैहा) तो हज़रत इब्राहीम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की नस्ल ही से हैं। इनके इलावा सैकड़ो नबी आप صَلَّىٰ ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की नस्ल में से हैं। तो आप عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ अबुल अम्बिया हैं। आप عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की तीसरी निस्बत पूरी नोए इंसानी के साथ यह है कि आप عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ "इमामुन्नास" हैं। इर्शादे रबनी है

وَإِذِ ابْتَلَىٰ إِبْرَاهِيمَ رَبُّهُ بِكَلِمَاتٍ فَأَتَمَّهُنَّ ۖ قَالَ إِنِّي جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ إِمَامًا

"और (याद करो) जब इब्राहीम को उन के रब ने चंद बातों में आज़माया और वो उन सब में पूरा उतर गया तो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने फ़रमाया: मै तुझे सब लोगों का इमाम (पेशवा) बनाने वाला हूं"। (अल-बक़रह: 124)

इस जलालते क़द्र के साथ क़ुरआन मजीद में जहां कहीं हज़रत इब्रहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ का ज़िक्र आया है तो उनको जो आख़िरी सनद दी जाती है वो यह है

وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِينَ

और आप {इब्राहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ} मुशरिकों में से नही थे (अल बक़रह : 135)

मालूम हुआ कि शिर्क से बिल्कुल आज़ाद हो जाना इंसानियत के लिए मेराज है और यह बुलंद तरीन मक़ाम है जिस तक इंसान पहुंच सकता है। और जिसके बारे में अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ यह फ़रमा दे कि मेरा यह बंदा मुशरिक नहीं है, मेरा यह बंदा शिर्क से पाक है गोया उसे आख़री सनद मिल गई, आख़री सर्टीफ़िकेट और आख़री (testimonial) मिल गया।

अब तक की गुफ़्तगू से यह वाज़ेह हो गया कि एक तरफ़ तो हमारे दीन में सबसे बड़ा जुर्म, सबसे बड़ा गुनाह. सबसे बड़ा ज़ुल्म, जो नाक़ाबिले माफ़ी है, वो शिर्क है। और दूसरी तरफ़ सबसे बड़ी सनद, सबसे बड़ा सर्टीफ़िकेट और सबसे ऊंचा मक़ाम यह है कि इंसान शिर्क से बिल्कुल पाक हो। अब इन दोनों चीज़ों को एक ही वक़्त ज़हन में रखते हुए मैं एक नतीजा निकाल रहा हूं। और वो यह की वाक़िअतन हर गुमराही, ज़लालत और कजरवी, ख़वाह वो नज़रियात की हो, अक़ाइद की हो या आमाल की, अगर तजुर्बा यह किया जाए तो मालूम होगा कि इसके डांडे कहीं न कहीं शिर्क से मिलते हैं। और हर ख़ैर व ख़ूबी, भलाई, नैकी, सहते फ़िक्र, सहते अक़ीदा, सहते अमल वग़ैरह के जितने भी शौबे हैं वो सब तौहीद की फ़रोग़ (corollaries) और लाज़मी नताइज हैं। तो इस तरह से यह एक हमागीर तसव्वुर है। शिर्क की इक़्साम (types) और इसकी फ़रोग़ को अगर आप देखें तो मालूम होगा कि यह वो शजराए ख़बीसा है कि हर बदी, हर गुनाह, हर जुर्म, और हर नज़रिया या ख़याल की गुमराही लाज़िमन इसी की किसी न किसी शाख़ की हैसियत रखती है। और इसके बरअकस हर ख़ैर, हर नैकी और हर भलई, ख़वाह वो ख़्याल और नज़रिये की हो या अमल की हो, इसका ताल्लुक़ लाज़िमन तौहीद के शजर-ए-तय्यबा है। इस “शजरे तौहीद” के लिए क़ुरआन मजीद में तमसील आई है और इसके बारे में अल्फ़ाज़ आऐ हैं

أَصْلُهَا ثَابِتٌ وَفَرْعُهَا فِي السَّمَاءِ

“इसकी जड़ मज़बूत व मुस्तहकिम है और इसकी शाख़ आसमान तक पहुंची हुई है।” (इब्राहीम : 24)

शिर्क की हमागीरी का एक तसव्वुर क़ुरआन मजीद में सूरह युसुफ़ की आयत 106 में यूं बयान हुआ है وَمَا يُؤْمِنُ أَكْثَرُهُم بِاللَّهِ إِلَّا وَهُم مُّشْرِكُونَ "और इंसानों की अक्सरियत का हाल यह है कि वो अल्लाहﷻ तबारक व तआला को मानते हैं, मगर किसी न किसी तरह के शिर्क के साथ"। यह बात जान लीजिए कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का इंकार तो तारिख़े इंसानी में आपको शाज़ कहीं मिलेगा, कहीं कहीं इस क़िस्म के लोग मिल जाते हैं कि जिनकी मत (बुद्धि) बिल्कुल मारी गई हो। आज के दौर में बज़ाहिर ऐसे महसूस होता है कि ख़ुदा का इंकार बहुत उरूज पर है, लेकिन वाक़िया यह है कि ख़ुदा को वो भी मानते हैं जिन्हें मुन्किरीन-ए-ख़ुदा समझा जाता है। दर हक़ीक़त उन्होंने माद्दे (Matter) को ख़ुदा के मक़ाम पर ले जाकर बैठा दिया है, ख़ुदा का इंकार नहीं किया है। एक हक़ीक़त कुबरा को मानने पर सब मजबूर हैं, जबकि सारा इख़्तिलाफ़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की सिफ़ात में है। मसलन यह इख़्तिलाफ़ कि वो जीवित है या मुर्दा है। अगर मुर्दा है तो उसे माद्दा कह दीजिये, और अगर जीवित है, साहिब-ए-इरादा है तो वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ है। चुनांचा फ़र्क़ तो सारा सिफ़ात का है। बहरहाल यह अर्ज़ करना मक़सूद है कि ख़ुदा को ख़ुदा के नाम से मानने वाले शाज़ रहे हैं। ख़ुदा को कुछ और नामों के तहत मानने वालों का तादाद भी शायद कुछ मिल जाए, लेकिन जो सबसे बड़ी गुमराही हमेशा रही है वो यह है कि एक बड़े ख़ुदा को मानने के साथ साथ कुछ और छोटे ख़ुदाओं को भी माना और तसलीम किया गया, ईमान के साथ किसी तरह के शिर्क की आमेज़िश कर ली गई, और यह है असल गुमराही जो हमें पूरी तारीख़ इंसानी में फैली हुई और छाई हुई नज़र आती है। मैं अपने हक़ीक़ी क़लबी अहसासात आपके सामने रख रहा हूं कि मुसलमान का ख़मीर जिस मिट्टी से उठा है, मुझे यक़ीन है कि वो जान बूझ कर कभी शिर्क नहीं करता, बल्कि ऐसा नामुम्किन है। इसके तसव्वुरात में अगर शिर्क आता है तो ग़ैर महसूस तरीक़े से आता है, किसी मुग़ालते के बाइस आता है, वो इसको शिर्क समझ कर शिर्क नहीं करता, इसमें जहालत और नासमझी कार फ़रमा हो सकती है। इसकी एक शकल यह भी होती है कि हर दौर में शिर्क का यह मर्ज़ एक नई सूरत इख़्तियार करके सामने आता है जिसको पहचानने में कोताही रह जाती है, और जब तक इसको पहचानने की सलाहियत पैदा न हो जाए इससे पूरी तरह बचना मुमकिन नहीं। बक़ौल शायर:

बहर रंगे के ख़्वाही जामेअ मी पोश

मन अंदाज़े क़दत रा मी शनासम

यानी ख़्वाह तुम किसी भी रंग का लबादह औढ़ कर आ जाओ मै तुम्हें तुम्हारे क़द से पहचान लूंगा। हो सकता है कि एक शख़्स बज़म-ए-ख़वेश बड़ा मवाह्हिद हो और पिछले अदवार (युगों) में शिर्क की जितनी भी सूरतें राइज रही हों और उलमा ने जिन जिन की निशानदेही कर दी हो उन सबसे अपने आप को बरी और पाक कर चुका हो, बायेंहुमा अपने दौर के शिर्क को न पहचान पाया हो और इसमें वो मुलव्विस हो। इस पर गुफ़्तगू तो बाद में होगी लेकिन मैं मिसाल के तौर पर अल्लामा इक़बाल की नज़म "वतनियत" पैश कर रहा हूं:

इस दौर में मह और है, जाम और है, जम और
साक़ी ने बिना की रविश-ए-लुत्फ़ो सितम और
मुस्लिम ने भी तामीर किया अपना हरम और
तहज़ीब के आज़र ने तरशवाए सनम और
इन ताज़ा ख़ुदाओं में बड़ा सबसे वतन है
जो पैरहन इसका है वो मज़हब का कफ़न है

अब ग़ौर किजिए कितना प्यारा मिसरा है । "तहज़ीब के आज़र ने तरशवाए सनम और"। आज से साढ़े चार हज़ार बरस पहले का आज़र पत्थर की मूर्तियां तराशता था और आज का आज़र कुछ ख़्याली तसव्वुरात के बुत बनाए हुए है। ज़माने ज़माने की बात है। उस वक़्त का इंसान शायद ज़मीन से ज़्यादा से ज़्यादा पांच छह फ़िट छलांग लगा सकता होगा, लेकिन आज चांद तक पहुंचा हुआ है। लिहाज़ा शिर्क ने भी बड़ी ऊंची उड़ान उड़ी है और बड़ी मुख़्तलिफ़ सूरतें इख़्तियार की हैं। अब ज़रूरत उस उक़ाबी निगाह की है जो अपने दौर के शिर्क को पहचान ले। अगर यह बसीरत नहीं होगी तो हो सकता है, जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, एक शख़्स अपने ख़्याल में पूरे ख़ुलूस के साथ शिर्क की हर क़िस्म से एलाने बराअत कर चुका हो और अमलन अपने आप को इससे बरी कर चुका हो, लेकिन इसके बावजूद वो किसी तरह के शिर्क में मुबतला और मुलव्विस हो। लिहाज़ा ज़रूरत इस बात की है कि एक बड़ा जामेअ और हमागीर तसव्वुर हमारे सामने हो। और न सिर्फ़ यह कि हम अपने ज़हन और फ़हम में तमाम इक़्सामे शिर्क का अहाता कर लें, बल्कि हमारे अंदर वो इजतिहादी सलाहियत पैदा हो जाए कि शिर्क जो भी नया लबादा ओढ़े इसमें इंसान इसको पहचान ले। लिहाज़ा इस वक़्त जो बहस होगी वो ज़्यादा तर इक़्सामे शिर्क के ज़ेल में होगी। इक़्सामे

शिर्क के सिलसिले में हमारे हां उलमा ने मुख़्तलिफ़ तक़्सीमें की हैं। मसलन एक तक़्सीम यह है कि एक शिर्क-ए-जली है और एक शिर्क-ए-ख़फ़ी है। यानी एक तो नुमायां और खुल्लम खुल्ला शिर्क है। मसलन एक शख़्स बुत को सजदा कर रहा है, जबकि एक ख़फ़ी शिर्क है कि जिसका तजुर्बा करके ही पता चलता है कि शिर्क हो गया, वो बज़ाहिर नज़र नहीं आता। इसकी मिसाल यह फ़रमाने नबवी ﷺ है कि "जिसने दिखावे की नमाज़ पढ़ी उसने शिर्क किया।" एक शख़्स नमाज़ पढ़ रहा है, लेकिन जब वो यह महसूस करता है कि कोई मुझे देख रहा है तो वो अपनी नमाज़ लम्बी कर देता है, सजदा तवील कर देता है, तो हुज़ूरे पाक ﷺ के फ़रमान की रू से यह शिर्क है। बज़ाहिर तो वो वही नमाज़ पढ़ रहा है, इसमें वही क़याम है, वही रकूअ है, वही सुजूद हैं, उसने वही सूरतुल फ़ातिहा पढ़ी है, वही "सुब्हाना रब्बियल आला" और वही "सब्हाना रब्बियल अज़ीम" कहा है। अपनी तरफ़ से उसने कोई इज़ाफ़ा नहीं किया है, सिवाऐ इसके कि ज़रा नमाज़ का दौरानिया बढ़ गया है, अगर पहले दस सेकंड का सजदा हो रहा था तो अब पंद्रह सेकंड का हो गया, लेकिन तज्ज़िया करने से मालूम होता है कि इस एक सजदे के दो मस्जूद होंगे। दस सेकंड का सज्दा तो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए था, लेकिन पांच सेकंड का सज्दा उस शख़्स के लिए है जिसे वो दिखा रहा है, और यही शिर्क है। तो एक है शिर्क-ए-जली और एक है शिर्क-ए- ख़फ़ी।

एक और तक़्सीम इस ऐतबार से की गई है कि एक है अक़ीदे का शिर्क और एक है अमल का शिर्क। एक शख़्स मुख़्तलिफ़ माबूदों को मानता है नाम लेकर, जबकि एक शख़्स वो है जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सिवा किसी माबूद को नाम लेकर नहीं मान रहा, लेकिन अगर तजज़िया किया जाए तो मालूम होता है कि इसके अमल में शिर्क है। मसलन नफ़्स परस्ती एक क़िस्म का शिर्क है। एक तरफ़ हुक्म है अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का और और एक तरफ़ ख़्वाहिश है अपने नफ़्स की। हम कितने ही मवाक़े (अवसरो) पर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक्म को पसे पुश्त डाल कर अपने नफ़्स की ख़्वाहिश को मुक़द्दम करते हैं! उस वक़्त हमारा अस्ल माबूद कौन है ? हमारा नफ़्स ही है। इर्शादे इलाही है:

أَرَأَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ إِلَٰهَهُ هَوَاهُ أَفَأَنتَ تَكُونُ عَلَيْهِ وَكِيلًا

(ऐ नबी ﷺ!) क्या आपने ग़ौर किया उस शख़्स के हाल पर जिसने अपनी ख़्वाहिशे नफ़्स को अपना माबूद बना लिया? तो क्या आप ऐसे शख़्स की ज़िम्मेदारी लेंगे? (अलफ़ुर्क़ान : 43)

यहां नोट किजिए कि लफ़्ज़ “इलाह” इस्तेमाल हुआ है, ताकि कोई मुग़ाल्ता न रहे। और यही हमारे कल्माए तय्यबा का लफ़्ज़ है ‘لَآ اِلٰهَ اِلّا اللّٰهُ’। तो मालूम हुआ कि अमल में शिर्क हो रहा है, अगरचे अक़ीदे में शिर्क नहीं है। उस शख़्स ने कभी भी अपने नफ़्स को माबूद माना नहीं , बल्कि आप इससे यह बात करेंगे तो वो आपका सिर फ़ोड़ देगा, लेकिन दरहक़ीक़त इसके अमल में शिर्क मौजूद है। इसी के ज़ैल में नबी-ए-अकरम ﷺ की एक हदीस है जिसमें आप ﷺ ने फ़रमाया “हलाक हो जाए दिरहम व दीनार का बंदा”। यहां लफ़्ज़ “अब्द” लाया गया है। इसी से “इबादत” बना है जिस के लिए फ़रमाया गया

يَا أَيُّهَا النَّاسُ اعْبُدُوا رَبَّكُمُ الَّذِي خَلَقَكُمْ وَالَّذِينَ مِن قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ

“ऐ लोगो! बन्दगी करो अपने रब की जिसने तुम्हें और तुमसे पहले के लोगों को पैदा किया, ताकि तुम बच सको ।(अल बक़रह:21)

आपको मालूम है कि रुपये की पूजा किस अंदाज़ से होती है । रुपये को कभी किसी ने माबूद नहीं माना, लेकिन अगर कोई बिल फ़ेल इसकी बंदगी कर रहा है तो इसका नाम ख़्वाह अब्दुर्रहमान हो या अब्दुल्लाह हो, लेकिन अस्ल में “अब्दुद्दीनार” और “अब्दुद्दिर्हम” है। अब आप ग़ौर किजिए कि हम में से कितने होंगे जो इन दोनों चीज़ों यानी नफ़्स प रस्ती और दौलत परस्ती के अंदर मुलव्विस नही हों! अगर कोई सत्तर फ़ीसद अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के अहकाम मान रहा है तो तीस फ़ीसद में कोताही कर रहा है। और आप इस कोताही को सिर्फ़ एक मंफ़ी क़द्र न समझिये कि बस अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की बंदगी में कमी और कोताही है। नहीं! बल्कि वहां मुस्बत तौर पर आप किसी और की बंदगी कर रहे हैं। यह नफ़्स की बंदगी हो रही है, पैसे की बंदगी हो रही है, शोहरत की पूजा हो रही है, इक़्तदार की पूजा हो रही है। तो मालूम हुआ कि हमारी ज़िंदगियों में यह दोनों इबादतें, दोनों परस्तिशें, दोनों पूजाएं साथ साथ चल रही हैं। यह शिर्क नहीं तो और क्या है? ऐसे लोगों पर यह सूरह बकरह कि 85 नंबर आयते मुबारका सादिक़ आती है:

أَفَتُؤْمِنُونَ بِبَعْضِ الْكِتَابِ وَتَكْفُرُونَ بِبَعْضٍ ۚ فَمَا جَزَاءُ مَن يَفْعَلُ ذَٰلِكَ مِنكُمْ إِلَّا خِزْيٌ فِي الْحَيَاةِ الدُّنْيَا ۖ

وَيَوْمَ الْقِيَامَةِ يُرَدُّونَ إِلَىٰ أَشَدِّ الْعَذَابِ ۗ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ

"तो क्या तुम किताब के एक हिस्से को मानते हो और एक का इंकार करते हो ? तो तुम में से जो कोई यह जुर्म करें उनका बदला इसके सिवा और क्या है कि इन्हें दुनिया की जिंदगी में ज़लील व ख़्वार कर दिया जाए और आख़िरत के दिन इन्हे शदीद तरीन अज़ाब में झोंक दिया जाए ? और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى उन हरकात से ग़ाफ़िल नहीं है जो तुम कर रहे हो।" (सुरह बकरह : 85)

अब यहां "أَشَدِّ الْعَذَابِ" के अल्फ़ाज़ पर ग़ौर करने से यह बात समझ में आती है कि यह तरज़े अमल शिर्क है, और शिर्क वो जुर्म है जिसके बारे में अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ने फ़रमा दिया कि इसकी बख़्शिश का कोई सवाल नहीं।

इक़्सामे शिर्क के हवाले से दो तक़्सीमें तो वो हैं जो मैंने आपके सामने रखीं , यानी शिर्के जली, और शिर्के ख़फ़ी, या शिर्के अक़ीदा और शिर्के अमली।

इमाम इब्ने तैमिया رَحْمَةُ اللّٰهِ का इन मुबाहिस में बड़ा ऊंचा मक़ाम है। उनकी इस्तिलाहात के मुताबिक़ एक है शिर्क फ़िल माअरफ़ा, यानी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की पहचान में शिर्क, और एक है शिर्क फ़ित्तलब। कुरआन में इर्शादे इलाही है ضَعُفَ الطَّالِبُ وَالْمَطْلُوبُ

"मदद चाहने वाला भी कमज़ोर और बोदा है और जिससे मदद चाही जाती है वो भी कमज़ोर और बोदा है"।(अलहज्ज : 73)

हर इंसान की ज़िंदगी का तज्ज़िया करने से मालूम होता है कि वो किसी मक़सूद और मतलूब को मोइय्यन करके दौड़ धूप कर कर रहा है। और तौहीद का तक़ाज़ा यह है कि मक़सूद और मतलूब के दर्जे में सिवाए अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के और कोई न हो।

कल्माए तय्यबा "لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللهُ" का इस ऐतबार से मफ़्हूम है

लामक़्सूदाइल्लल्लाह (अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सिवा कोई उद्देश्य नहीं है)

लामत्लूबाइल्लल्लाह (अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सिवा कोई लक्ष्य नहीं है)

लामहबूबाइल्लल्लाह (अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सिवा कोई प्रियतम नहीं है)

इन्सान के जीवन का उदेश्य , लक्ष्य और प्रियतम सिर्फ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى होना चाहिए । अगर मक़सूद , मतलूब और महबूब होने के एतबार से कोई और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के बराबर हो गया तो यही शिर्क है। बक़ौले इक़बाल:

बुतों से तुझ को उम्मीदें ख़ुदा से नाउम्मीदी
मुझे बता तो सही और काफ़री क्या है ?

इमाम इब्ने तैमिया رَحِمَهُ اللّٰهِ ने शिर्क की बहस को इन दो इस्तिलाहात में जमा किया है। "शिर्कफ़िलमअरफ़ा" यह है कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की पहचान में कोई कमी हो, इसकी ज़ात व सिफ़ात के ज़िमन में किसी को लाकर इसका साझी और हम पल्ला बना दिया गया हो। यह मअरफ़त ख़ुदावंदी में शिर्क है। और जो शिर्कफ़िलअमल है इसको इन्होंने नाम दिया "शिर्क फ़ित्तलब" का कि अगर मक़सूद व मतलूब और महबूबे हक़ीक़ी होने के ऐतबार से कोई शै, कोई शख़्स, कोई हस्ती, कोई इदारा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के हम पल्ला हो जाए, दिल के तख्त पर अगर वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के बराबर आकर बैठ जाए तो यह "शिर्कफ़ित्तलब" है।

इक़्सामे शिर्क के हवाले से एक तीसरी तक़्सीम भी है जो मेरे नज़दीक ज़्यादा आम फ़हम (comprehensive) है और मैं ज़ेल में इसी के ऐतबार से बहस करूंगा। मैं समझता हूं कि अगर इस तक़सीम के हवाले से इक़्सामे शिर्क का एक दफ़ा अहाता कर लिए जाए तो इन्शाअल्लाह वो बातिनी बसीरत पैदा हो जाएगी कि अगर कभी शिर्क की कोई और सूरत भी पैदा हुई तो इस बसीरत की रौशनी में इसके पहचानने में दिक़्क़त नहीं होगी। इस तक़्सीम की रू से शिर्क की तीन क़िस्में हैं: एक है "शिर्कफ़िज़्ज़ात" यानी अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की हस्ती, अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की ज़ात में किसी और को इस का साझी और हम पल्ला बना लेना। इसके लिए अरबी का अस्ल "कुफ़ू" है। (हम उर्दू बोल चाल में आम तौर पर "हमकुफ़ू" कह देते हैं, हालांके लफ़्ज़ में कुफ़ू में "हमकुफ़ू" का पूरा मफ़्हूम मौजूद है जो फ़ारसी तर्तीब है।) सूरतुल इख़्लास में दो टोक अल्फ़ाज़ में फ़रमा दिया गया: وَلَمْ يَكُن لَّهُ كُفُوًا أَحَدٌ "और कोई इसका कुफ़ू नहीं है"! "कुफ़ू का मतलब है बराबर, हमसर। हज़रत शैख़ अल हिंद رَحِمَهُ اللّٰهِ ने इस आयत का तर्जुमा किया है : "और नहीं है इसके जोड़े का कोई।" पहले जमाने में यह लफ्ज़ शादी के मामले में बहुत इस्तेमाल होता था कि शादी कूफु में होनी चाहिए , यानी बराबरी का मामला होना चाहिए और इस मामले में मुख़्तलिफ़ ऐतबारात से देखा जाना चाहिए, ताकि अमलन कोई बेजोड़ वाली बात न हो जाए और अदम मवाफ़्क़त नही हो, बल्कि माहौल कुछ एक जैसा ही हो जिसमें लड़का और लड़की पले बड़े हों, तक़रीबन एक ही सतह की ज़िंदगी इन्होंने बसर की हो, आदत में कहीं बहुत ज़्यादा फ़र्क़ न हो । और यह मामला दर हक़ीक़त हिक्मत में से है। तो इस लफ्ज़ "कुफ़ू" को ज़हन में लाइए कि किसी को

अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का कुफ़ू बना देना “शिर्क फ़िज़्ज़ात” है और यह बदतरीन, उरयां तरीन और घिनोवना तरीन शिर्क है, जिस पर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का ग़ज़ब बहुत भड़कता है।
दूसरी क़िस्म का शिर्क “शिर्क फ़िस्सिफ़ात” कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की सिफ़ात में किसी को इसके बराबर कर देना, मद्द-ए-मुक़ाबिल बना देना, साझी क़रार दे देना और मिसल बना देना। आप उलमाए कराम के ख़ुतबात में यह अलफ़ाज़ सुनते होंगे

لَا مِثْلَ لَهٗ وَلَا مِثَالَ لَهٗ وَلَا مَثِيْلَ لَهٗ وَلَا ضِدَّ لَهٗ وَلَا نِدَّ لَهٗ. यह तमाम अल्फ़ाज़ इसी ऐतबार से हैं कि शिर्क के हर शाएबा की नफ़ी हो जाए, हर नौइयत का इन्कार हो जाए, कि न कोई इसका कुफ़ू है, न कोई इसका मिसल है, न कोई इसकी मिसाल है, न कोई इसका हम रुतबा है, न कोई इसका हम पल्ला है, न कोई इसका मद्दे मुक़ाबिल है, न कोई इसका साझी है। तो सिफ़ात में किसी को भी किसी भी पहलू से अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के बराबर कर देना शिर्क फ़िस्सिफ़ात है। और मैं पेशगी तौर पर यह अर्ज़ कर दूंगा कि यह बड़ा लतीफ़ और नाज़ुक सा मामला है और इसमें एक इल्मी मस्अला मुलव्विस है। इसमें चंद ऐसी लतीफ़ बातें हैं कि अगर वो मद्दे नज़र न रहीं तो बड़ी आसानी से इंसान का क़दम तौहीद की शहराह (राजमार्ग) से हट कर शिर्क के किसी रास्ता पर पड़ सकता है। इसमें मुग़ालता बेशऊरी तौर पर, बल्कि मैं तो कहूंगा कि ख़ुलूस के साथ भी हो सकता है। इस किस्म के शिर्क के बारे में

“ہشدار کہ رہ بردم تیغ است قدم را” वाला मामला है। जैसे पुलसिरात के बारे में कहा जाता है कि वो बाल से ज़्यादा बारीक और तलवार की धार से ज़्यादा तेज़ है, ऐसा ही मामला शिर्क फ़िस्सिफ़ात का है। इसके चंद अहम और मोटे मोटे मसाइल पर जब गुफ़्तगू होगी तो यह हक़ीक़त वाज़ेह हो जाएगी और आपको, इंशाअल्लाह अलजबरा (बीजगणितं) के फ़ार्मूलों की तरह वो बात हाथ में आ जाएगी कि जिसके बाद ऐसे बहुत से अक़ीदे जो हमारे हां अक़ाइद के ज़िमन में पड़े हुए हैं जिनकी वजह से बड़ी खींचतान, कशमकश और रस्साकशी है, वो तमाम अक़ीदे हल होते चले जाएंगे।
तीसरा शिर्क है “शिर्क फ़िलहुक़ूक़” यानी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक़ूक़ में इसके साथ शिर्क करना, किसी को हुक़ूक़ के मामले में इसका साझी बनाना या इसके बराबर करना। वैसे तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक़ूक़ अगर गिनें जाऐं तो बहुत हो जाते हैं, लेकिन “हाथी के पाऊं में सबका पाऊं” के मिस्दाक़ एक लफ़्ज़ ऐसा भी है कि जिसमें अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के तमाम हुक़ूक़

जमा हो जाते हैं और वो लफ़्ज़ "इबादत" है, जो तमाम अम्बिया व रुसुल عَلَيۡهِ‌ٱلسَّلَامُ की दाअवत का मर्कज़ी नुक़्ता रहा है। अज़रोए अल्फ़ाज़े क़ुरआनी

يَا أَيُّهَا النَّاسُ اعْبُدُوا رَبَّكُمُ الَّذِي خَلَقَكُمْ وَالَّذِينَ مِن قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ

"ऐ लोगों! इबादत करो अपने रब की जिसने पैदा किया तुमको और उनको जो तुमसे पहले गुज़रे हैं, ताकि तुम बच सको"।(बकरह :21)

يَا قَوْمِ اعْبُدُوا اللَّهَ مَا لَكُم مِّنْ إِلَٰهٍ غَيْرُهُ ۖ إِنْ أَنتُمْ إِلَّا مُفْتَرُونَ

"ऐ मेरी क़ौम! अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इबादत करो, इसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं" (हूद:50,61,84)

أَنِ اعْبُدُوا اللَّهَ وَاتَّقُوهُ وَأَطِيعُونِ

"(हज़रत नूह ने अपनी कौम से कहा) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इबादत करो, और इसका तक़्वा इख़्तियार करो और मेरी पैरवी करो।" (नूह : 3)

इबादत ही इंसान का मकसद-ए-तख़्लीक़ है, इसकी ज़िंदगी का मक़्सद है। इर्शादे इलाही है

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنسَ إِلَّا لِيَعْبُدُونِ

"और मैंने जिनों और इंसानों को सिर्फ़ अपनी इबादत (बंदगी) के लिए पैदा किया।" (अज़्ज़ारियात : ५६)

लिहाज़ा इस लफ़्ज़ "इबादत" में अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के तमाम हुक़ूक़ आ गए। चुनांचे "शिर्क फ़िल्हुक़ूक़" को शिर्क फ़िल इबादत" कहा जा सकता है। इबादत के पांच रुख़ हैं जिनके बारे में बहस से मालूम हो जाएगा कि शिर्क फ़िल इबादत कौन कौन सी सूरतें हैं। इससे हमें इंशाअल्लाह मौजूदा शिर्क के अलावा वो क़दीम शिर्क जो दुनिया में पाए गए , इन सबका फ़हम व शऊर हासिल हो जाएगा, बल्कि वो बसीरत भी पैदा हो जाएगी कि जिसके नतीजे में आइन्दा भी अगर यह मर्ज़ किसी और सूरत में ज़ाहिर हुआ तो इसको समझना और पहचानना आसान हो जाएगा।

शिर्कफ़िज़्ज़ात (شرک فی الذات)

जैसा के मैंने अर्ज़ किया, यह बदतरीन, उरयांतरीन, घिनाओना तरीन और अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के नज़दीक मबग़ूज़तरीन शिर्क है। दुनिया में इस शिर्क की दो सूरतें राइज रही है। एक को मज़हबी किस्म का शिर्क कहा जा सकता है और एक को फ़लसफ़ याना किस्म का शिर्क। बल्कि सहीहतर तअबीर यह होगी कि पहला शिर्क वो है जो उन क़ौमों में पैदा हुआ जो अपने आपको रसूलों से मंसूब करती हैं और आसमानी हिदायत पर यक़ीन रखती हैं। और दूसरा शिर्क वो है जो उन क़ौमों में पैदा हुआ जिनके मज़ाहिब की असल हक़ीक़त फ़लसफ़ियाना है, कुछ हिक्मत और फ़लास्फ़ा के फ़िक्र और सोच पर उनके मज़हब की बुनियाद क़ायम है।

पहली नोइयत का शिर्क है किसी को अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का बेटा या बेटी क़रार देना। ज़ाहिर बात है कि बेटा या बेटी तो हम जिंस और हम नोअ हुए ! जैसे मुग़ल का बेटा मुग़ल है, इंसान का बेटा इंसान है और घोड़े का बेटा घोड़ा वग़ैरह। मालूम हुआ कि यह नोअ में, जिंस में, मर्तबा में, ग़र्ज़ हर एतबार से बिल्कुल बराबरी और कुफ़ू वाला मामला है, और यही वजह है कि इस नोअ के शिर्क पर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का ग़ज़ब बहुत भड़कता है है। और इस क़द्र काबिले ताज्जुब बात और सितम ज़रीफ़ि है कि इस नोअ के शिर्क में मुब्तला वो लोग हुए जो नबियो और रसूलों के मानने वाले हैं, जलीलुल क़द्र पैग़म्बरों की तरफ़ अपने आपको मंसूब करने वाले हैं, आसमानी हिदायात का दम भरने वाले और अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ की किताबों को मानने वाले हैं। चुनांचे एक तरफ़ तो मुशरिकीन अरब थे जो अपने आपको मंसूब करते थे उस मवाहिद आज़म हज़रत इब्राहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ की तरफ़, और उनका दाअवा यह था कि हम हनीफ़ी हैं, यानी दीन हनीफ़ पर हैं, वही दीन-ए-हनीफ़ जो के हज़रत इब्राहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ का दीन था। और उनका हाल यह था कि उन्होंने फ़रिश्तों को ख़ुदा की बेटियां क़रार दिया। दूसरी तरफ़ यहूदियों ने हज़रत उज़ैर عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ को "इब्नुल्लाह" कहा, उन्हें अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का बेटा माना गया। तौरात को आप पढ़ कर देखे तो मालूम होगा कि वहां शिर्क की मज़म्मत इस क़द्र शिद्‌दत के साथ आई है कि शिर्क को ज़िना के साथ ताबीर किया गया है। वहां बार बार आपको यह तमसील मिलेगी कि जैसे किसी शख़्स की बीवी ज़िना की मरतकिब हो और

अपने शौहर से बेवफ़ाई करे बिल्कुल यही तर्ज़े अमल है उस शख़्स का जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ बेवफ़ाई कर रहा है। हज़रत मूसा عَلَيْهِ السَّلَامُ ने बछड़े को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का शरीक बनाने की सज़ा के तौर पर उन लोगों के क़त्ल का हुक्म दिया था जिन्होंने शिर्क का इरतिकाब किया था, और यही इरतदाद की सज़ा है जो हमारे हां भी मौजूद है। वहां शिर्क की पादाश में हज़ारों इस्राईलियों को क़त्ल किया गया। लेकिन इसी क़ौम में फिर यह शिर्क पैदा हुआ कि इन्होंने हज़रत उज़ैर عَلَيْهِ السَّلَامُ को ख़ुदा का बेटा क़रार दे दिया। और यह मर्ज़ और गुमराही अपनी इन्तिहा और नुक़्ताए उरूज को पहुंची है ईसाईयों के हां जिन्होंने हज़रत मसीह عَلَيْهِ السَّلَامُ को ख़ुदा का बेटा क़रार दिया। यहूदियों में तो सिर्फ़ एक दौर ऐसा गुज़रा और उनके कुछ मख़्सूस फ़िर्के थे जिन्होंने यह शिर्क किया, मगर मसीहियत तो कुल की कुल इसी अक़ीदे पर मबनी है, और उन्होंने इस मामले में इस दर्जे ग़लू किया कि हज़रत ईसा बिन मरियम عَلَيْهِ السَّلَامُ को सराहत के साथ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का सुल्बी बेटा क़रार दिया और इनके लिए लफ़्ज़ "वलद" इस्तेमाल किया। यहां यह बात ज़हन में रखिए के "इब्न" के लफ़्ज़ में दो अहतमालात हैं। अरबी ज़बान में "इब्न" किसी ताल्लुक़ और निस्बत को भी ज़ाहिर करता है, और ज़रूरी नहीं कि वो बाप और बेटे ही की निस्बत हो। मस्लन आप किसी को "इब्नुलवक़्त" कहते हैं तो वो वक़्त का बेटा नहीं है, बल्कि इसका बंधन और ताल्लुक़ वक़्त से है, मरग़ेबादनुमा है, हवा इधर की चल रही है तो इधर को उसका रुख़ है, उधर की चल पड़े तो उधर को इसका रुख़ हो जाएगा। इसी तरह "इब्नुस्सबील" कहते हैं रास्ता चलने वाले मुसाफ़िर को। इसका मतलब यह नहीं के वो रास्ते का बेटा है, बल्कि रास्ते के साथ जुड़ा हुआ है, चला जा रहा है। तो "इब्न" का लफ़्ज़ ज़ो माअनीयन है। अरबी ज़ुबान में इंजील के तर्जुमो का मुताला करने से मालूम होता है कि हज़रत मसीह عَلَيْهِ السَّلَامُ "बेटा" के मअनों अपने लिए बतौर इस्तआरा लफ़्ज़ "इब्न" इस्तेमाल करते थे। जैसे तौरात में शिर्क के लिए ज़िना की तम्सील मिलती है कि जिस तरह एक बीवी ज़िना का इरतकाब करके अपने शौहर से बेवफ़ी करती है, इसी तरह एक शख़्स शिर्क करके अपने रब से बेवफ़ाई का मरतकब हो रहा है। इसी तरह इस निस्बत को देखिए जो बाप और बेटे के दर्मियान है कि बाप भी चूंके अपने बेटे को पालता पोसता और परवान चढ़ाता है, इसकी परवरिश करता है, लिहाज़ा इसी निस्बत से हज़रत मसीह عَلَيْهِ السَّلَامُ ने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को मख़्लूक़ का रब होने की हैसियत से आसमानी बाप और इंसानों को उसके बेटे क़रार दिया। अनाजील अरबा (अरबी ज़ुबान में

इंजील के तर्जुमो) में यह बात मिलती है कि हज़रत मसीह عَلَيْهِ السَّلَامُ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى को जहां "मेरा आसमानी बाप" कहते हैं वहां "तुम्हारा आसमानी बाप" भी कहते हैं। ऐसा क़तअन नहीं है के उन्होंने ख़ुसूसियत के साथ (exclusively) अपने ही लफ़्ज़ "इब्न" इस्तेमाल किया हो, बल्कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى को "तमाम नोऐ इंसानी का आसमानी बाप" कहा गया और सिर्फ़ अस्तआरा के तौर पर। लेकिन ईसाईयों ने आगे बढ़ा कर इस अक़ीदे को जहां पहुंचाया है वो लफ़्ज़ "वलदुन" है। "वलदुन" के माअना सुल्बी औलाद के हैं, और औलाद में बेटे और बेटियां दोनों शामिल हैं। लफ़्ज़ "वलदुन" में किसी इस्तआरे या किसी और ताल्लुक़ का मामला भी नहीं है। तो यह जान लिजिए कि क़ुरआन मजीद ने ईसाईयों के बारे में तो दोनों बातें कहीं कि उन्होंने हज़रत ईसा عَلَيْهِ السَّلَامُ को "इब्नुल्लाह" भी क़रार दिया और "वलदुल्लाह" भी क़रार दिया। जैसे उनका क़ौल नक़ल हुआ

وَيُنذِرَ الَّذِينَ قَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا

और उनको सावधान कर दे, जो कहते है, " अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى सन्तानवाला है"।(अल्कहफ़ : 4)

लेकिन क़ुरआन ने यहूदियों के बारे में सिर्फ़ एक इल्ज़ाम लगाया गया कि उन्होंने हज़रत उज़ैर عَلَيْهِ السَّلَامُ को "इब्नुल्लाह" क़रार दिया। और मुशरिकीन अरब के बारे में आता है उन्होंने फ़रिश्तों को ख़ुदा की बेटियां क़रार दिया। अब आप देखिए, सूरतुल इख़्लास, जो तौहीद के मौज़ू पर जामेअ तरीन सूरह है, इसमें चार आयतों में से पहली दो आयतें

قُلْ هُوَ اللَّهُ أَحَدٌ ﴿١﴾ اللَّهُ الصَّمَدُ ﴿٢﴾

तो फ़ल्सफ़ियाना हैं और बहुत बुलंद मफ़्हूम की हामिल हैं। लेकिन आख़िरी दो आयते जहां आकर मज़मून सबसे ज़्यादा नुमायां है, वो इसी नोअ के शिर्क से मुताल्लिक़ हैं और इसकी नफ़ी कर रही है لَمْ يَلِدْ وَلَمْ يُولَدْ "न उसने जना और न वो जना गया"। तमाम सुल्बी रिश्तों से वो बिल्कुल पाक है। न कोई उसका बाप है न कोई उसकी मां है, न कोई उसका बेटा है और न कोई उसकी बेटी है। और फिर इसका जो मफ़्हूम बयान किया गया, जो नतीजा निकाला गया, वो है وَلَمْ يَكُن لَّهُ كُفُوًا أَحَدٌ "और इसका कोई कुफ़ू नहीं है"। इसके जोड़ का कोई नहीं है, इसकी बराबरी का कोई नहीं है, इसका हम पल्ला कोई नहीं है, इसका हम जिंस कोई नहीं है और इसकी नोअ का कोई नहीं है।

सूरह बनी इस्राईल की आख़िरी आयत जो शिर्क के मौज़ूअ पर बड़ी जामेअ आयत है, जिस में शिर्क की नफ़ी के चार अस्लूब इख़्तियार किये गये, इसमें सबसे पहला अस्लूब यही है:

وَقُلِ الْحَمْدُ لِلَّهِ الَّذِي لَمْ يَتَّخِذْ وَلَدًا وَلَمْ يَكُن لَّهُ شَرِيكٌ فِي الْمُلْكِ وَلَمْ يَكُن لَّهُ وَلِيٌّ مِّنَ الذُّلِّ ۖ وَكَبِّرْهُ تَكْبِيرًا

“और कहो, "प्रशंसा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है, जिसने न तो अपना कोई बेटा बनाया और न बादशाही में उसका कोई सहभागी है और न ऐसा ही है कि वह दीन-हीन हो जिसके कारण बचाव के लिए उसका कोई सहायक मित्र हो।और बड़ाई बयान करो उसकी, पूर्ण बड़ाई”

सूरह बनी इस्राईल के फ़ौरन बाद सूरतुल कहफ़ शुरू होती है। यह दोनों सूरतें जुड़वां हैं और हिक्मते क़ुरआनी के बहुत बड़े ख़ज़ाने हैं जो क़ुरआन मजीद के बिल्कुल वुसत में मौजूद हैं। सूरतूल कहफ़ के पहले रकूअ में ज़िक्र हो रहा है ।

وَيُنذِرَ الَّذِينَ قَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا ﴿4﴾ مَّا لَهُم بِهِ مِنْ عِلْمٍ وَلَا لِآبَائِهِمْ ۚ كَبُرَتْ كَلِمَةً تَخْرُجُ مِنْ أَفْوَاهِهِمْ ۚ إِن يَقُولُونَ إِلَّا كَذِبًا ﴿5﴾

और (अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने अपने बंदे मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर यह क़ुरआन इसलिये नाज़िल किया है) उनको सावधान कर दे, जो कहते है," अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ सन्तानवाला है।"(4) इसका न उन्हें कोई ज्ञान है और न उनके बाप-दादा ही को था। बड़ी बात है जो उनके मुँह से निकलती है। वे केवल झूठ बोलते है (5)

इसे नोअ के शिर्क पर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के ग़ैज़ व ग़ज़ब का यह अंदाज़ा अपने पूरे नुक़्ताए उरूज को पहुंच जाता है अगली सूरह, सूरह मरियम के आख़िरी रकूअ में। जो शख़्स इबारत के तैवर को पहचानता और लहजे के फ़र्क़ को जानता हो वो बख़ूबी समझ सकता है कि यहां अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का ग़ैज़ व ग़ज़ब किस तरह भड़कता है। इर्शाद इलाही है:

وَقَالُوا اتَّخَذَ الرَّحْمَٰنُ وَلَدًا ﴿88﴾ لَّقَدْ جِئْتُمْ شَيْئًا إِدًّا ﴿89﴾ تَكَادُ السَّمَاوَاتُ يَتَفَطَّرْنَ مِنْهُ وَتَنشَقُّ الْأَرْضُ وَتَخِرُّ الْجِبَالُ هَدًّا ﴿90﴾ أَن دَعَوْا لِلرَّحْمَٰنِ وَلَدًا ﴿91﴾ وَمَا يَنبَغِي لِلرَّحْمَٰنِ أَن يَتَّخِذَ وَلَدًا ﴿92﴾ إِن كُلُّ مَن فِي السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ إِلَّا آتِي الرَّحْمَٰنِ عَبْدًا ﴿93﴾

वे कहते है,"रहमान ने किसी को अपना बेटा बनाया है।" (88) अत्यन्त भारी बात है, जो तुम घड़ लाए हो! (89) निकट है कि आकाश इससे फट पड़े और धरती टुकड़े-टुकड़े हो जाए और पहाड़ धमाके के साथ गिर पड़े, (90) इस बात पर कि उन्होंने रहमान के लिए बेटा होने का दावा किया! (91) जबकि रहमान की

प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है कि वह किसी को अपना बेटा बनाए (92) आकाशों और धरती में जो कोई भी है एक बन्दें के रूप में रहमान के पास आनेवाला है (93)

इनमें आयत नंबर 92 बिल्कुल क़ाबिले ग़ौर है। शायानेशान नहीं होने की वजह किया है ? यह बड़ी सादा सी बात है । औलाद की ज़रूरत अस्ल में इसलिये होती है कि कोई हस्ती ख़ुद फ़ानी हो। अगर किसी को बक़ाअ और दवाम हासिल हो और उसे दुनिया में हमेशा के लिए रहना हो तो इसे किसी औलाद की ज़रूरत नहीं है। औलाद तो बक़ाअए नोअ और बक़ाअऐ नस्ल के लिए है। जो फ़ानी है वो यह महसूस कर सकता है कि मेरी औलाद की शकल में मेरी हस्ती का एक तसलसुल बरक़रार रहेगा। इसी लिए तो वो रोते हैं जिनके हां औलाद नहीं, ख़ास तौर पर जिनकी औलाद-ए-नरीना (बेटा) नहीं वो कहते हैं कि हमारा नाम मिट जाएगा। यही ताअना तो दिया गया था मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ को, कि इनकी कोई औलाद-ए-नरीना नहीं, इनका नाम ख़त्म हो जाएगा, यह तो अब्तर हैं, जिसके जबाव में सूरतूल कौसर नाज़िल हुई:

إِنَّا أَعْطَيْنَاكَ الْكَوْثَرَ ﴿١﴾ فَصَلِّ لِرَبِّكَ وَانْحَرْ ﴿٢﴾ إِنَّ شَانِئَكَ هُوَ الْأَبْتَرُ ﴿٣﴾

“(ऐ नबी ﷺ!) हमने आपको ख़ैर कसीर अता की है। पस अपने रब की नमाज़ पढ़े और (उसी के नाम की) कुर्बानी किजिए। यक़ीनन आपका दुश्मन ही बेनाम व निशान होगा।”

जबकि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ तो ख़ुद दाइम है, क़ाइम है, बाक़ी है, अल हय्युल क़य्यूम है, लिहाज़ा ज़ाहिर बात है कि यह तसव्वुर ही नहीं किया जा सकता कि इसे भी किसी औलाद की जरूरत हो। यह ज़रूरत तो अस्ल में उनके लिए है जो फ़ी नफ़्सिही, बिज़ातिही फ़ानी हैं। लिहाज़ा फ़रमाया गया

وَمَا يَنبَغِي لِلرَّحْمَٰنِ أَن يَتَّخِذَ وَلَدًا ﴿٩٢﴾

“और रहमान के तो यह शायाने शान ही नहीं है कि वो किसी को अपना बेटा बनाए”।

सूरतुल इनआम की बड़ी प्यारी आयत नंबर १०१ है ।

بَدِيعُ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ ۖ أَنَّىٰ يَكُونُ لَهُ وَلَدٌ وَلَمْ تَكُن لَّهُ صَاحِبَةٌ ۖ وَخَلَقَ كُلَّ شَيْءٍ ۖ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ

वह आकाशों और धरती का सर्वप्रथम पैदा करनेवाला है। उसका कोई बेटा कैसे हो सकता है, जबकि उसकी पत्नी ही नहीं? और उसी ने हर चीज़ को पैदा किया है और उसे हर चीज़ का ज्ञान है

इसलिए कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए बेटा या बेटी मानोगे तो पहले इसके लिए कोई बीवी भी मानना पड़ेगी। लेकिन अजीब बात यह है कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए कोई भी बीवी मानने के लिए तैयार नहीं है। तो कैसे उसके औलाद हो जाएगी ? वो तो "अलबदीअ" है। यहां "बदीअ" के दोनों मफ़्हूम ज़हन में रखिए। एक मफ़्हूम है कायनात को अदमे महज़ से वजूद बख़्शने वाला। बदीअ का दूसरा मफ़्हूम है अनोखी चीज़, बेमिसल चीज़। यहां अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की वो शान भी ज़ाहिर है कि वो बेमिसल है, अपनी ज़ात में बिल्कुल अनोखा है, इसकी कोई बीवी नहीं, तो इसकी औलाद कहां से हो जाएगी?

इस ज़िमन में क़ुरआन मजीद ने मुशरिकीन अरब के ज़िक्र में कुछ लतीफ़ तन्ज़ भी किये हैं कि ईसाईयों और यहूदियों ने तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को बेटे दिये लेकिन तुमने तो कमाल किया कि अलाट भी कीं तो बेटियां कीं ! इर्शादे इलाही है

أَفَأَصْفَاكُمْ رَبُّكُم بِالْبَنِينَ وَاتَّخَذَ مِنَ الْمَلَائِكَةِ إِنَاثًا ۚ إِنَّكُمْ لَتَقُولُونَ قَوْلًا عَظِيمًا

"(यह बड़ी अजीब बात है कि) तुम्हारे रब ने तुम्हें बेटे अता कर दिए, और ख़ुद अपने लिए फ़रिश्तों को बेटियां बना लिया ? यक़ीनन तुम बड़ी भारी बात अपनी ज़बान से निकाल रहे हो।" (बनी इस्राईल :40)

सूरतुन्नजम में फ़रमाया गया ।

أَلَكُمُ الذَّكَرُ وَلَهُ الْأُنثَىٰ ﴿21﴾ تِلْكَ إِذًا قِسْمَةٌ ضِيزَىٰ ﴿22﴾

"क्या तुम्हारे लिए बेटे हैं और उसके लिए बेटियां? यह तक़्सीम तो बड़ी ग़ैर मुन्सिफ़ाना है।"

इसलिए कि तुमने इसे अलाट भी की हैं तो बेटियां की हैं। यही सूरतुस्साफ़्फ़ात में फ़रमाया

أَصْطَفَى الْبَنَاتِ عَلَى الْبَنِينَ ﴿153﴾ مَا لَكُمْ كَيْفَ تَحْكُمُونَ ﴿154﴾

"क्या अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने बेटों को छोड़ कर (अपने लिए) बेटियां इख़्तियार कर लीं ?तुम्हें क्या हो गया है ? कैसे हुक्म लगा रहे हो ?"

अलब्ता यह बात मुसल्लमा है कि गुज़िश्ता अक़्वाम में जो क़ौमें भी शिर्क फ़िज़्ज़ात में मुब्तला हुईं इनमें से किसी ने भी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए बीवी तस्लीम नहीं कीं।

ईसाईयत के बारे में यह बात जान लिजिए के अगरचे ईसाईयों में इस शिर्क "शिर्क फ़िज़्ज़ात" ने सबसे ज़्यादा बदतरीन सूरत इख़्तियार की और यह शिर्क अपने नुक़्ताए उरूज को पहुंचा, लेकिन ईसाईयों में भी जो तस्लीसें राइज रही हैं उन्में पहली तस्लीस (Trinity) जो इब्तदा में ज़्यादा मानी जाती थी वो यह है *God the Father, Mary the mother and Jesus the*

son. यानी बाप, बेटा और मां तीन इलाह हैं और इसमें हज़रत मरियम سلام علیہا माँ के रिश्ते से अलुहियत में शरीक हैं, ख़ुदा की बीवी होने की हैसियत से नहीं! और इसमें बड़ा फ़र्क़ है। इस जदीद दौर में इस तस्लीस को मानने वाले बहुत कम ईसाई हैं। अब जो तस्लीस राइज है, जो निस्बतन ज़्यादा फ़लसफ़याना है, वो यह है *God the Father, Jesus the son and the Holy Spirit (Ruh-ul-Qudus).* यानी बाप, बेटा और रूहुलक़ुद्स। इस तस्लीस में से हज़रत मरियम سلام علیہا को निकाल दिया गया है। और मैं समझता हूं कि यह भी इस शाएबा से बचने के लिए किया गया जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए बीवी होने का हो सकता था। क्योंके इंसानी ज़हन को बहुत बड़ा और ना मुनासिब महसूस होता है। चुनांचे अब जो तस्लीस ईसाईयों के हां राइज है, वो है, बाप, बेटा और रूहुल्क़द्स" की तस्लीस।

शिर्कफ़िज़्ज़ात की दूसरी सूरतें

शिर्क फ़िज़्ज़ात की जो दूसरी सूरतें हैं वो फ़लसफ़्याना मज़ाहिब में राइज रही हैं। फ़लसफ़्याना मज़ाहिब की मुकम्मल तरीन और नुमायां तरीन मिसालें हिंदुस्तान के मज़ाहिब हैं। हिंदू मत असल में कोई मज़हब नहीं है, बल्कि यह बहुत से मज़ाहिब का मजमूआ है। इनमे वो मज़ाहिब भी हैं जो ख़ुदा का सिरे से इंकार कहते हैं, वो मज़ाहिब भी हैं जो शदीद तरीन शिर्क के अंदर मुब्तला हैं, और इनके बरअक्स इनमें वो मज़ाहिब भी हैं जो तौहीद की बहुत ऊंची चोटी पर पहुंचे हुए हैं। इसी तरह बुद्ध मत भी बज़ाहिर अहवाल जैसा भी नज़र आता है, एक फ़लसफ़्याना मज़हब है। जैन मत भी एक फ़लसफ़्याना मज़हब है। ताउइज़्म और कंफ़यूशिसिज़्म भी फ़लसफ़्याना मज़ाहिब हैं। इसी तरह यह जो हिंदी चीनी(Indo Chinese) मज़ाहिब हैं, इन सब की बुनियाद फ़लसफ़ा है। अगरचे यक़ीन के साथ तो नहीं कह सकते, लेकिन गोतम बुद्ध के बारे में बाज़ खोजकर्ता का गुमान है कि वो हज़रात ज़ुल्कुफ़्ल عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ थे, कपलवस्तु वाले। यानी कपल का "प", "फ़" से बदल गया गया तो ज़ुल्कुफ़्ल हो गया (वल्लाहु आलम)। बहरहाल इन फ़लसफ़याना मज़ाहिब में शिर्क की जो यह दो सूरतें और शकलें बनीं इनको जान लिजिए।

एक शक्ल है जिसे अंग्रेज़ी में Pantheism से ताबीर किया जाता है। फ़ारसी में इसका तर्जुमा "हमाउस्त" है, अगरचे इसको ख़ल्ते मबहस किया जाता है अक़ीदा "वहदतुल वजूद" से, जो हमारे हां के बाज़ हकमाअ, फ़लासफ़ा और सूफ़ियाअ की अक्सरयत का अक़ीदा है। बाज़ लोग

नासमझी में “हमाउस्त” को वहदतुल वजूद के मुतारादिफ़ या वहदतुल वजूद को हुमाउस्त के मुतारादिफ़ क़रार दे देते हैं।

शिर्क फ़िज़्ज़ात की दूसरी नुमायां शकल है जिसे अंग्रेज़ी में Incarnation और हिंदी में “अवतार” का अक़ीदा कहा जाता है, और अरबी का लफ़्ज़ “हलूल” तक़रीबन इन दोनों सूरतों की ताबीर के लिए इस्तेमाल होता है।

अब पहले यह समझ लिजिये कि हमाउस्त या Pantheism क्या है। यह असल में फ़लसफ़ाए वजूद की एक बहस है। हिंदुस्तान में बाज़ लोग दो हस्तियों को क़दीम मानते हैं, यानी ख़ुदा भी क़दीम और माद्दा (द्रव्य) भी क़दीम। इनके ख़्यालात में तख़लीक़ का अमल ख़ुदा और माद्दे के इश्तराक से वजूद में आता है। जैसे एक बढ़ई लकड़ी से कुर्सी, मेज़ या मिम्बर बना दे, तो कुर्सी, मेज़ या मिम्बर बनाने वाला बढ़ई भी पहले से मौजूद था और वो लकड़ी भी पहले से मौजूद थी जिससे यह चीज़ें बनाइ गईं। इसी तरह ख़ुदा भी क़दीम और माद्दा भी क़दीम है, और ख़ुदा ने माद्दे से यह मुख़्तलिफ़ शक्लें बना दी हैं। इसको आप सान्वियत कह लिजिए कि दो हस्तियों को क़दीम मानना। इसके अलावा एक अक़ीदा उनका रहा जो तीन अश्याअ को क़दीम मानते हैं, यानी ख़ुदा भी कदीम, माद्दा भी क़दीम और रूह भी क़दीम। वो ख़ुदा और माद्दे के साथ रूह को भी क़दीम मानते हैं कि वो भी हमेशा से है। यह “तादादे क़द्माअ” का अक़ीदा है कि क़दीम हस्तियां एक से ज़ाइद दो या तीन मान ली गईं और यह भी एक तरह की तसलीस है।

लेकिन जो निस्बतन तौहीद के मानने वाले थे, जिन्होंने रूह को क़दीम माना और न माद्दा को, बल्कि सिर्फ़ ख़ुदा को क़दीम मानते थे, अब उन्होंने तौहीद से शिर्क निकाल लिया। इनके लिए यह बड़ा अश्काल पैदा हुआ कि फिर ख़ुदा ने इस दुनिया को कैसे बनाया ? इसके लिए जब कोई शै पहले से थी नहीं और सिर्फ़ वही क़दीम है, यानी न माद्दा क़दीम, न रूह क़दीम तो यह दुनिया कैसे वजूद में आ गई ? तो इसकी एक शक्ल इन्होंने यह क़रार दी और यह अक़ीदा वजूद में आया कि ख़ुदा ने ख़ुद ही इस कायनात का रूप धारण कर लिया है । जैसे बर्फ़ पिघल कर पानी बन जाए तो अब बर्फ़ ही पानी है, यानी बर्फ़ ही ने पानी की शक्ल इख़्तियार कर ली। अब इस पानी को आप ने आग दी तो वो भाप बन गया। तो अब यह भाप ही पानी है और भाप ही बर्फ़ है। इसी तरह उनके ख़्याल में ख़ुदा ने कुल्लियतन या जुज़्अन उस कायनात की शक्ल इख़्तियार कर ली। अब इस अक़ीदे की भी दो शक्लें हो

गईं। एक यह कि ख़ुदा अब रहा ही नहीं, बल्कि ख़ुदा कुल का कुल इस कायनात की शक्ल में ढल गया है, अब अलैहदा से ख़ुदा के नाम से कोई शै नहीं। और दूसरी शक्ल यह के ख़ुदा के किसी जुज़्व ने इस कायनात की शक्ल इख़्तियार कर ली। यानी अगरचे ख़ुदा भी मौजूद है, लेकिन यह कायनात भी इसका जुज़्व है, या यह इसी के जुज़्व की एक शक्ल है। हिंदुओं के हां यह तसव्वुरात हैं कि (नाऊज़ु बिल्लाह) ख़ुदा के सिर से ब्राह्मण पैदा हुए, बाज़ूओं से क्षत्रिय पैदा हुए जो लड़ने वाले हैं, और इसके पाऊं से शुद्र पैदा हुए। यह तसव्वुरात इसी अक़ीदे का एक मन्तक़ी रब्त हैं। इस अक़ीदे के फ़लसफ़याना पहलू पर ग़ोर करने से यह नतीजा निकलता है कि अब हर चीज़ अलूहियत की हामिल है। इस लिए कि जब ख़ुदा ही ने कायनात का रूप धार लिया है तो फिर दरख़्त भी ख़ुदा हैं, सूरज भी ख़ुदा है, चांद भी ख़ुदा है, कीड़े मकोड़े भी ख़ुदा हैं, वग़ैरह वग़ैरह। यह बदतरीन शिर्क है जो आपको हिंदुस्तान की सरज़मीन में मिलेगा।

सिर्फ़ ख़ुदा को क़दीम मानने वालों में से बाज़ ने इस तरह पैदा शुदह अश्काल के अज़ाले के लिए एक दूसरी शक्ल यह इख़्तियार की, कि ख़ुदा इंसानों की शक्ल में ज़ाहिर हो जाता है, यानी किसी एक इंसान में हलूल कर जाता है। यह अवतार Incarnation का अक़ीदा है। चुनांचे इनके नज़दीक रामचन्द्र जी और कृष्ण जी ख़ुदा के अवतार हैं। इनके हां नौ अवतार थे। एक दसवां अवतार अपने आपको मुसलमान कहने वालों ने इनमें शामिल कर लिया है, जिसका तज़किरा बाद में आएगा, बहरहाल हमाउसत (Pantheism) और अवतार बन जाने या हलूल कर जाने (Incarnation) का अक़ीदा शिर्क फ़िज़्ज़ात की वो सूरत है जो फ़लसफ़याना मज़ाहिब में राइज है।

उम्मते मुहम्मदिया صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर ख़ुसूसी फ़ज़ल व करम

अब इन तमाम चीज़ों को सामने रख कर हम उम्मते मुस्लिमा का जाइज़ा लें कि इस नोअ का शिर्क हमारे हां आया या नहीं, और अगर आया तो किसी सतह पर और किसी हद तक! इस ज़िमन में सबसे पहले तो मैं अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का शुक्र अदा करता हूं, और मेरा गहरा अहसास है कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का इस उम्मत पर बड़ा फ़ज़ल व करम हुआ कि चौदह सौ बरस बीत जाने के बावजूद इस नोअ का कोई अक़ीदा मुसलमानों के किसी भी मुस्तनद फ़िर्क़े के मुस्तनद अक़ाइद की फ़हरिस्त में मौजूद नहीं है। यह अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का बड़ा फ़ज़्ल

और एक क़िस्म का मोज़िज़ा है। हालांकि इस उम्मत को जो अक़ीदत और मुहब्बत रही है अपने रसूलुल्लाह ﷺ से, इस मुहब्बत से कोई मुकाबला भी नहीं है उस मुहब्बत अक़ीदत और जांनिसारी जो किसी दूसरे के उम्मतियों को अपने रसूल के साथ है। इसके बावजूद नबी-ए-अकरम ﷺ को ख़ुदा का बेटा या ख़ुदा नहीं बनाया गया। अवाम , साधारण वक्ताओ , नाअतगोओ और उन शायरों (जो सभी वादियोंमे घूमते है) के हां इस क़िस्म के इशारात और किनाए मिल जाते है और यह सिर्फ़ ऐहाम की हद तक है। “ऐहाम” का मतलब है कि बात साफ़ और वाज़ेह न की जाए कि जिस पर गिरफ़्त हो, लेकिन सामअ के ज़हन में एक वहम और एक ख़्याल उभार दिया जाए। इस नौईयत की बातें शाइरों, वाअज़ों और नअत गौओं ने की हैं, जिनके शिर्किया होने में कोई शक नहीं है। मसलन यह शैर के:

वही मस्तूई अर्श था ख़ुदा होकर
उतर पड़ा मदीने में मुस्तफ़ा हो कर

अब आप देखिए कि इसमें और अवतार के अक़ीदे में क्या फ़र्क़ है? लेकिन ज़हन में रखिए कि यह एक शाइर की मबालग़ा आराई है। यह इस दर्जे की चीज़ें और इस तरह के इस्तआरे हैं जिन से शायरी की दुकान चलती है। इस तरह का एक और शैर मलाख़्ता किजिए :

मदीने की मस्जिद में मंबर के ऊपर
बग़ैर ऐन का इक अरब हमने देखा!

अब लफ़्ज़ “अरब(عرب)” में से ऐन(ع) निकाल दिजिए तो रब(رب) रह जाएगा। यानी रसूले अरबी ﷺ अस्ल में रब(رب) हैं। नाऊज़ु बिल्लाही मिन ज़ालिक। शैर में बात वाज़ेह नहीं की गई और आप गिरफ़्त करेंगे तो कहा जाएगा हमने तो ऐसा कुछ नहीं कहा। लेकिन यह कि एक वहम और ख़्याल पैदा कर दिया, ज़हन को उधर मोड़ दिया, और सुनने वालों में जो ज़्यादा खुशअक़ीदा होंगे उन्होंने वाह वाह की होगी और दाद दी होगी। तो इस तरह की बातें अज्ञानियों और अवाम के तहतुल शऊर के अन्दर परवान चढ़ती चली गई हैं, लेकिन हमारे हां के मुस्तनिद फ़िर्क़ों के मुस्तनिद अक़ाइद में किसी जगह भी कोई ऐसा शाएबा या इशारह तक नहीं है। और यह मेरे नज़दीक मोज़िज़ा है मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ का और अस्ल में इसका बराहे रास्त ताल्लुक़ खत्मे नबुवत के साथ। दरअस्ल यह तहफ़्फ़ुज़ है

जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को अता फ़रमाया कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ इस ग़ुलू का हदफ़ और निशाना नहीं बने। यह ख़त्मे नबुवत के लवाज़िम में से है कि एक तरफ़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने क़ुरआन की हिफ़ाज़त का ख़ुद ज़िम्मा लिया ।

إِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَإِنَّا لَهُ لَحَافِظُونَ ﴿٩﴾

यक़ीक़न हमने ही यह अज़ज़िक्र (क़ुरआन) नाज़िल किया और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं (अलहिजर:9)

और दूसरी तरफ़ मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को हिफ़ाज़त अता फ़रमाई कि उनकी शख़्सियत मस्ख न हो जाए, वो कहीं अवतार न बना दिये जाऐं, वो भी कहीं ख़ुदाओं की फ़हरिस्त में शामिल न हो जाएं, इन्हें कहीं ख़ुदा का बेटा न बना दिया जाए। तो यह दर हक़ीक़त एक तहफ़्फ़ुज़ है जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तरफ़ से नबी ए अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को अता हुआ है। इसका ज़्यादा अंदाज़ा आप को उस वक़्त होगा जब आप इस हक़ीक़त को सामने रखेंगे यह मामला हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ के साथ भी हुआ है।

हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ की निस्बत नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के साथ एक उम्मती की है, चुनांचे आप हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से कम अज़ कम एक दर्जा तो नीचे लाएंगे। वैसे तो अहले सुन्नत के नज़दीक नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के बाद दर्जा अबू बकर رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ का है, फिर हज़रत उमर رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ का है, फिर हज़रत उसमान رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ का है और फिर हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ का है। लेकिन उम्मतियों को एक ही केटागरी शुमार करने से हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से कम अज़ कम एक दर्जा तो नीचे हैं, लेकिन आप सोचिए कि हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को ख़ुदा कहने वाले पैदा हो गए। ख़ुदा का बेटा भी नहीं बल्कि ख़ुदा बना दिया गया। बहुत से लोगों को हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ ने इस बदतरीन अक़ीदे की पादाश में ज़िंदा आग में जलवाया है। यह एक यहूदी साज़िश थी और इस साज़िश को कामयाब करने के लिए लोगों ने पूरे इस्तक़लाल के साथ जानें दीं। इसलिए कि क़ुर्बानी दिए बग़ैर किसी भी साज़िश की आग आगे नहीं बढ़ती। हमारे हां जुहलाअ में जो नअरा मरव्वज है वो "या अली मदद" का है "या मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ मदद" का नहीं है। "या मुहम्मद" "या रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ" तो महज़ अपने तश्शखुस को नुमायां करने के लिए मस्जिदों में लिखने के काम आता है, या यह नाअरा एक ख़ास फ़िर्क़े के इज्तमा या जलसा के अंदर लगवाया जाता है, ताकि मालूम हो जाए के यह

मस्जिद फ़लां फ़िर्क़े की है और यह जल्सा फ़लां गिरोह का है। बाक़ी यह के जो नअरा मैदान में लगता है वो “या मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ मदद” का नहीं, बल्कि “या अली मदद” का होता है। तो अलूहियत का यह मामला जिस तरह हज़रत मसीह عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के साथ हुआ था, हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ के साथ भी हुआ।

मुस्नद अहमद में यह हदीस मौजूद है। हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ बयान करते हैं कि मुझसे रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़रमाया: “तुम्हारे अंदर हज़रत ईसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के साथ एक मशाबहत पाई जाती है कि (एक तरफ़) उनसे यहूद ने बुग़्ज़ रखा हत्ता के इनकी वालिदा मुहतरमा पर (बदकारी) की तोहमत लगाई, और (दूसरी तरफ़) नसारा ने इनसे इंतहाई मुहब्बत की, हत्ता के इन्हें इस मुक़ाम पर पहुंचा दिया जो उनका मुक़ाम नहीं। ” यह दो इंतिहाएं हैं। एक गिरोह हज़रत ईसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की अक़ीदत में इस क़द्र ग़ाली हो गया कि इसने इन्हें ख़ुदा का बेटा बना दिया और एक गिरोह उनकी दुश्मनी में इस इंतिहा तक को पहुंचा कि इन्हें معاذ الله वलदुज़्ज़ना (नाजायज़ रिश्ते कि वजह से पैदा) क़रार दिया और अपने बस पड़ते इन्हें सूली पर चढ़ा कर दम लिया। बईना यही मामला हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ के साथ भी होकर रहा कि हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को ख़ुदा कहने वाले भी पैदा हुए और ख़वारिज़ का वो फ़िरक़ा भी पैदा हुआ जो हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को (नाऊज़ू बिल्लाह) काफ़िर और वाजिबुल क़त्ल कहता था और इन्ही में से एक फ़र्द ने बिल आख़िर हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को शहीद कर दिया।

अब आप इस पस मंज़र में देखिए के अल्हम्दुलिल्लाह मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को न तो ख़ुदा का बेटा कहा गया और न ही ख़ुदा कहा गया। यह अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का फ़ज़ल व करम और इसका ख़ुसूसी तहफ़्फ़ुज़ है कि इस नो का कोई भी ख़्याल हमारे हां पैदा नहीं हुआ। जैसा के मैंने अर्ज़ किया, शायरी और नअत गोई की हद तक ऐसी हरकात ज़रूर सरज़द हुई हैं। इसलिए के नअत कहते हुए हुदूद के अंदर रहना अक्सर व बेशतर बहुत मुश्किल हो जाता है। किसी शायर ने बिल्कुल सही बात कही है

ادب گاہیست زیر آسماں از عرش نازک تر
نفس گم کردہ می آید جنید و بایزید ایں جا

चुनांचे नअत गोई में कुछ अदम तवाज़न पैदा हो जाता है, होश का दामन हाथ में नहीं रहता। हमारा तरज़े अमल यह होना चाहिए के बड़े बड़े मम्दूह शख़्स की मम्दूहियत भी हक़ को तस्लीम करने में और बातिल के अब्ताल में हमारे रास्ते की रुकावट न बने। मासूम सिर्फ़ नबी होते हैं और नबुवत ख़त्म हो गई मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर। अपनी ज़ात में हुज्जत तो नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ही थे। बाक़ी सब को तो परखा जाएगा क़ुरआन और हदीस की कसौटी पर। जो इस पर सहीह उतरे वो सहीह है। किसी भी शख़्स को हम यह दर्जा नहीं दे सकते कि वो जो चाहे कह दे हम इसे तस्लीम कर लेंगे, बल्कि इसकी जो बात सहीह है वो तस्लीम करेंगे और जो ग़लत है उसको रद्द कर देंगे। कसे बाशद ! बहरहाल हमारे हां शायरी और नअत गोई की हद तक अवतार के अक़ीदे के ख़्यालात मौजूद हैं और सिफ़ाते इलाही में नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का हम पल्ला बना दिया गया है। यह बहस इंशा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ "शिर्क फ़िस्सिफ़ात" के ज़ेल में तफ़्सील से आएगी। लेकिन जैसा के मैंने अर्ज़ किया, आपको मुसलमानों के किसी भी मुस्तनद फ़िर्क़े के मुस्तनद उलमा के हां ऐसी चीज़ें नहीं मिलेंगी। अहले इल्म जब बात करेंगे तो इनकी बात के अंदर तवाज़न होगा, और वो इन इल्मी अहत्यातों को मल्हूज़ रख कर बात करेंगे। वाक़या यह है कि अगर इंसान ज़रा भी ग़ैर मुहतात हो जाऐ तो वो शिर्क के दामन में जा पहुंचता है।

इसी तरह जब वहदतुल वजूद का अक़ीदा हमारे हां शोअरा का तख़ताए मश्क़ बन गया तो इसकी भी जो तअबीरें अवाम तक पहुंची हैं वो हमाउवस्त और अवतार वाली हैं। हमाउवस्त की ताअबीर हमारे हां इस शअर में मिलती है:

خود کوزہ و خود کوزہ گر و خود گلِ کوزہ
خود رندِ سبو کش
خود برسرِ آں کوزہ خریدار بیامد
بشکست و رواں شد

बरतन बनाने वाला जब मिट्टी लेकर इसको चक्कर पर चढ़ाता है तो एक नई चीज़ यानी बरतन वजूद में आ जाता है। अब वैसे तो यह तीन चीज़ें हो गईं। एक ख़ुद बरतन बनाने वाला, दूसरा वो बरतन या कोज़ह और तीसरी चीज़ वो मिट्टी या गारा जिससे बरतन वजूद में आया। लेकिन इस शेर की रू से अस्ल में यह तीन नहीं हैं, बल्कि एक ही है। अब वो

बरतन बनाने वाला ख़ुद ही इस कोज़े में शराब भी पी रहा है। फिर ख़ुद ही इसने ख़रीदार बन कर इसको ख़रीदा, और फिर इसको तोड़ा और आगे बढ़ गया। यह जो सारा तमाशा है यह उस हमाउस्त की ताबीर है। वैसे यह शायरी इतनी बुलंद है, तरकीबें इतनी चुस्त और आहंग ऐसा दिल कश है कि आदमी झूम जाता है। अगले शेर में यहां तक कहा गया :

در برقعۂ جبریل بود نازل قرآں
آں چشمۂ وحدت
آخر بہ جہاں صورت آں یار برآمد
محبوب جہاں شدا

यानी जिब्रिल का लबादा भी उसने ख़ुद ही ओढ़ा, क़ुरआन का नाज़िल करने वाला भी वो ख़ुद है और आख़िर कार नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की शक्ल में वो (ख़ुदा) दुनिया में ख़ुद ही आ गया, और महबूबे जहां बन गया। (इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन)

अब दिखिए इसमें हमाउस्त और अवतार दोनों तरह के तसव्वुरात जमा हैं। शायरी अगरचे बहुत प्यारी और वजद में लाने वाली है, लेकिन बात कहीं से कहां पहुंच गई! इसी लिए किसी ने बड़ी प्यारी बात कही है; “बा ख़ुदा दीवाना बाश व बा मुहम्मद होशियार! यानी आप अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की जितनी तारीफ़ कर सकें करते चले जाएं, तब भी आप इसकी तारीफ़ का हक़ अदा नहीं कर सकते, लेकिन हज़रत मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की तारीफ़ करते हुए बहुत महतात और चोकस रहना पड़ेगा। किसी इंसान के लिए मुम्किन नहीं है कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इबादत और इसकी मअरफ़त का हक़ अदा कर सके। इस ज़िमन में ला महाला यही कहना पड़ेगा مَا عَبَدْنَاكَ حَقَّ عِبَادَتِكَ وَمَا عَرَفْنَاكَ حَقَّ مَعْرِفَتِكَ “ऐ रब! हमने तेरी बंदगी नहीं की कि जितना तेरी बन्दगी का हक़ था और तेरी मअरफ़त हासिल नहीं कर सके जितना की इसका हक़ था।”

नबी ए अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ फ़रमाते हैं कि क़यामत के रोज़ मैदाने हशर में, जब दरबारे ख़ुदा वंदी लगा होगा, हम्द का झंडा मेरे हाथ में होगा और मैं उस रोज़ अपने रब की वो हम्द करूंगा जो आज नहीं कर सकता। इसलिए कि हम्द होती है मअरफ़त की निस्बत और मअरफ़ते नबवी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ किसी एक जगह आकर ठहर नहीं गई, बल्कि इसमें मुसल्सल तरक़्क़ी होती रही, दर्जात बुलंद तर होते रहे। अज़रोए अल्फ़ाज़े क़ुरआनी

وَلَلْآخِرَةُ خَيْرٌ لَّكَ مِنَ الْأُولَىٰ

“और हर आने वाली साअत आपके लिए हर गुज़री हुई साअत से बेहतर है”।(अद दुहा : 4)

तो जैसे जैसे मअरफ़ते ख़ुदावन्दी की मनाज़िल तय हो रहीं हैं कि हम्द के दर्जात भी बुलंद हो रहे हैं। जितना आप रब को पहचानेंगे इतनी ही इसकी हम्द कर सकेंगे ! चुनांचे आप अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की जितनी हम्द भी कर लें, फिर भी इसकी हम्द अदा नहीं होती, "हक़ तो यह है कि हक़ अदा नहीं हुआ"। लेकिन नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के मामले में इन्तहाई होशियार रहना होगा। "ہشدار کہ رہ بردم تیغ است قدم را!" के मिस्दाक़ यहां इंसान का क़दम तलवार की धार पर है। फ़रमाने इलाही है لَا تَغْلُوا فِي دِينِكُمْ अपने दीन में ग़लुव हरगिज़ न करो (अन्निसा:171) यह ग़लुव ही तो था के हज़रत उज़ैरعَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ को ख़ुदा का बेटा बनाया गया, हज़रत ईसा इब्ने मरियमعَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ को ख़ुदा का बेटा बनाया गया। यह मुहब्बत और अक़ीदे का ग़लुव है। चुनांचे नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की मदह, तारीफ़ और सनाअ के बयान में बहुत अहतयात की ज़रूरत है। और वाक़्या यह है कि अज्ञानियों और अवाम से क़तअ नज़र हमारे हां के मुस्तनद फ़िर्क़ों के मुस्तनद अक़ाइद में अल्हम्दुलिल्लाह इस अहतियात को मलहूज़ रखा गया है।

शख़्सियते मुहम्मदी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के तहफ़्फ़ुज़ के अस्बाब

इस ज़िमन में बातिनी तौर पर तो अस्ल दखल है हिक्मते ख़ुदा बंदी को कि यह तहफ़्फ़ुज़े ख़ुसुसी है जो मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को हासिल हुआ, लेकिन इसमें दो चीज़ें और हैं जो ज़ाहिरी अस्बाब में से हैं। जैसे कि आप देखते हैं कि क़ुरआन मजीद की हिफ़ाज़त का अस्ल सबब तो है अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का फ़ैसला और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का ज़िम्मा, लेकिन ज़ाहिरी अस्बाब में हिफ़्ज़े क़ुरआन का जो मामला चला, यह इसका ज़रिया है। यह क़ुरआन सिर्फ़ किताबों में ही नहीं है, بَلْ هُوَ آيَاتٌ بَيِّنَاتٌ فِي صُدُورِ الَّذِينَ أُوتُوا الْعِلْمَ

"बल्कि यह खुल्लम खुल्ला आयात हैं जो अहले इल्म के सीनों में महफ़ूज़ हैं"।(अल अन्कबूत:79)

फ़न क़िरआत की किताबें तो बाद में लिखी गई हैं। क़ुरआने हकीम तो एक ज़बान ने दूसरी ज़बान से सीखा है, और यह एक सीने से दूसरे सीने में मुन्तक़िल हुआ है, और अब लाखों की तादाद में हाफ़िज़े कराम मौजूद हैं। फिर रमज़ानुल मुबारक और तरावीह का निज़ाम जिसमें हिफ़्ज़ को ताज़ा किया जाता है। तो यह सारा सिलसिला हिफ़ाज़ते क़ुरआन मजीद के

ज़ाहिरी अस्बाब में से है, जिसके बातिन में दरअस्ल मश्यते ख़ुदा वंदी कार फ़रमा है। इसी तरह नबी-ए-अकरम ﷺ को जो तहफ़्फ़ुज़ मिला है कि आप ﷺ के साथ वो ज़ुल्म रवा नहीं रखा गया, हालाकि आप ﷺ के एक उम्मती पर वो ज़ुल्म हो गया, तो असल में तो यह मश्यते इलाही है, लेकिन इसके ज़ाहिरी अस्बाब में से पहला सबब यह है कि कुरआन ने नबी-ए-अकरम ﷺ की बशरीयत को बहुत नुमायां किया है। क़ुरआने करीम में जाबजा यह मज़मून मुख़्तलिफ़ पेराओं में आया है। एक जगह इर्शाद हुआ :

قُلْ إِنَّمَا أَنَا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ يُوحَىٰ إِلَيَّ أَنَّمَا إِلَٰهُكُمْ إِلَٰهٌ وَاحِدٌ

"(ऐ नबी ﷺ!) कहिये कि मैं तो एक इंसान हूं तुम ही जैसा, मेरी तरफ़ वही की जाती है कि तुम्हारा ख़ुदा बस एक ही ख़ुदा है"।(अलकहफ़:110)

सूरह बनी इस्राईल और सूरह कहफ़, जो दो जुड़वां सूरतें हैं, इनमें अहले इल्म के लिए एक अजीब नुक्ता है कि इन दोनों की आख़िरी दो दो आयात फ़ैले अमर "कुल" से शुरू होती हैं। सूरह बनी इस्राईल की आख़िरी आयत में अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तौहीद का बयान है। फ़रमाया

وَقُلِ الْحَمْدُ لِلَّهِ الَّذِي لَمْ يَتَّخِذْ وَلَدًا وَلَمْ يَكُن لَّهُ شَرِيكٌ فِي الْمُلْكِ وَلَمْ يَكُن لَّهُ وَلِيٌّ مِّنَ الذُّلِّ ۖ وَكَبِّرْهُ تَكْبِيرًا

"और (ऐ नबी ﷺ!) कह दीजिए कि तमाम तारीफ़ उस अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है जिसने न किसी को बेटा बनाया, न कोई बादशाही में उसका शरीक है और न वो कमज़ोर है कि कोई इसका दोस्त हो, और इसकी बढ़ाई बयान करो कमाल दर्जे की बढ़ाई"।

इस मक़ाम पर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की शान को ख़ुब नुमायां किया गया है, मबादा कहीं अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को उसके मक़ामे बुलंद से गिरा दिया जाए। इस लिए शिर्क की दो ही सूरतें हैं। पहली सूरत यह के अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को उसके मक़ामे रफ़ीअ से गिरा कर मख़लूक़ात की सफ़ में लाकर खड़ा किया जाए और दूसरी सूरत यह के मख़लूक़ात में से किसी को उठा कर ख़ुदा के बराबर बैठा दिया जाए। इनके अलावा तीसरी सूरत तो मुम्किन नहीं। सूरह बनी इस्राईल की आख़िरी आयत ने शिर्क की पहली सूरत की जड़ काटी है, जबकि दूसरी सूरत दूसरी सूरत की जड़ काटी है सूरह कहफ़ की आख़िरी आयत (110) के इन शब्दों ने

قُلْ إِنَّمَا أَنَا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ يُوحَىٰ إِلَيَّ أَنَّمَا إِلَٰهُكُمْ إِلَٰهٌ وَاحِدٌ

यही मज़मून सूरह बनी इस्राईल में एक जगह और भी आया है। जब मुशरिकीने अरब ने नबी ए अकरम ﷺ से मुआज्ज़ात तलब किये कि अगर आप ﷺ

अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के रसूल हैं तो हमारे लिए फ़ौरन ही यहां एक चश्मा बरआमद हो जाए, या एक बाग़ तैयार हो जाए, या एक महल बन जाए, या हमें आसमान पर चढ़ कर दिखाएं, तो इन सब बातों का यह जवाब दिलवाया गया قُلْ سُبْحَانَ رَبِّي هَلْ كُنتُ إِلَّا بَشَرًا رَّسُولًا

"(ऐ नबी صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ!) कह दीजिए पाक है मेरा परवरदिगार, मैं तो सिर्फ़ एक इंसान हूं, जिसे रसूल बना कर भेजा गया है"।

तुम यह मुतालबे मुझसे तब करते अगर मैंने ख़ुदाई का दावा किया होता। मैंने ख़ुदाई का दावा तो नहीं किया। सबूत और दलील तलब की जाती है दावे की मुनास्बत से। अगर मैंने अलूहियत और ख़ुदाई का दावा किया होता तो तुम्हारे मुताल्बे दुरुस्त थे कि यह करके दिखाओ तो तुम्हे ख़ुदा मानेंगे, जबकि मैंने तो सिर्फ़ एक दावा किया है कि मैं एक रसूले बशर हूं, लिहाज़ा मुझसे इसी की मुनासिबत से कोई दलील तलब करो। तो पहली बात तो यह है कि क़ुरआन मजीद ने नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरीयत को बहुत नुमायां किया है।

एक बार बरेलवी मकतब फ़िक्र के मुम्ताज़ आलमे दीन साहबज़ादा फ़ैज़ुल हसन साहब ने अपनी तक़रीर में अपने मुख़ालफ़ीन पर बड़े लतीफ़ पेराए में तन्क़ीद की, जो मुझे पसंद आई। उन्होंने अपने मस्लक और हम मशरब लोगों के सामने मुख़ालफ़ीन को ललकार कर कहा: "क्या तुम हमें पागल और जाहिल समझते हो? क्या हम क़ुरआन नहीं पढ़े हुए या हम अरबी नहीं जानते? हम ख़ुब जानते हैं कि क़ुरआन मे नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को बशर कहा है। हम तो सिर्फ़ यह कहते हैं कि तुम आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरीयत को ज़्यादा नुमायां न करो, बशर बशर की रट न लगाओ कि यह सूए अदब है। इसलिए कि तुम्हारे वालिद का नाम अब्दुर्रहमान है तो तुम इसे अब्दुर्रहमान कह कर नहीं पुकारते, अब्बा जान कहते हो!" बहर हाल क़ुरआन मजीद जिस तरह से नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरीयत को नुमायां कर रहा है तो यह किसी हिक्मत की वजह से है।

فِعْلُ الْحَكِيمِ لَا يَخْلُوْ عَنِ الْحِكْمَةِ के मिस्दाक़ लाज़िमन इसकी कोई ज़रूरत है, लाज़िमन कोई फ़ित्ना है जिसका सद्द-ए-बाब मक़सूद है। चुनांचे इस मक़्सद और हिक्मत के तहत इसको बयान करना होगा। अल्बत्ता ज़िद्दम ज़िद्दा का मामाला हरगिज़ नहीं होना चाहिए।

इसी ज़िद्दम जिद्दा की मिसाल के तौर पर नाम लिए बग़ैर एक दूसरे मक्तब फ़िक्र के एक बहुत बड़े आलिमे दीन का वाक़्या पेश करता हूं। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ उनकी मग़्फ़िरत फ़रमाए! जिसकी मुझे तहसीन करनी थी इसका नाम लेकर बात की है और जिस पर तन्क़ीद करनी है इसका नाम नहीं लेना चाहता। वो साहब पंजाबी में सीरतुन्नबी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर मिली जुली तक़रीर कर रहे थे, जिसमें तफ़्सीर भी थी, सीरत भी थी और इख़्तलाफ़ी मसाइल भी थे। वाक़्या यह है कि उस अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के बंदे ने पूरी तक़रीर में सहाबा किराम رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ में से किसी के नाम के साथ कहीं भी “हज़रत” और رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ नहीं कहा। जब बैअत रिज़वान का वाक़्या सुनाया तो अपने मख़्सूस ख़ुत्बयाना अंदाज़ में उन्होंने कहा (उर्दू तर्जुमा) “अरे! उस्मान ज़िंदा है और इधर बैअत हो रही है! तो कहा गया तुम्हारा इल्मुल्ग़ैब ” यह आग को हवा देने का सा एक अंदाज़ है और एक रस्सा कशी का मामला है। वर्ना यह कि इन मामलात को हम हल करने पर आएें तो क़तअन कोई मुश्किल मसअला नहीं है। तो पहली बात तो यह है कि यह जो तहफ़्फ़ुज़ हुआ है रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इसमें बहुत बड़ा हिस्सा इसका है कि क़ुरआन ने नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरीयत को बहुत नुमायां किया है। इसी के ताबेअ दूसरी बात समझ लीजिए कि नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने भी अपनी बशरीयत को बहुत नुमायां किया गया है। अगर कहीं ज़रा भी वहम पैदा होने का इम्कान नज़र आया तो वहां पर भी नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़ौरन टोक दिया। मस्लन तअज़ीमन खड़े होना कोई बड़ी बात नहीं। कोई बुज़ुर्ग हस्ती आऐ तो आप खड़े हो जाते हैं, यह इसकी ताअज़ीम है। लेकिन नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने अपने लिए इसे भी पसंद नहीं किया, बल्कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ सहाबा رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को इससे सख़्ती से रोकते थे।

एक सहाबी رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ की ज़बान से गुफ़्तगू में यह अल्फ़ाज़ निकल गए ‘‘مَا شَاءَ اللّٰهُ وَمَا شِئْتَ’’: यानी जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहे और जो आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ चाहें। इस पर आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़ौरन टोक दिया اَجَعَلْتَنِیْ لِلّٰهِ نِدًّا؟ مَاشَاءَ اللّٰهُ وَحْدَهٗ “क्या तुमने मुझे अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का मदद मक़ुबिल बना दिया? (बल्कि वही होगा) जो तंहा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहे!” यहां आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने “निद्द” का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जिसकी जमा “अंदाद” है।

क़ुरआन मजीद में (अल बक़रह:165) इर्शादे इलाही है

وَمِنَ النَّاسِ مَن يَتَّخِذُ مِن دُونِ اللَّهِ أَندَادًا يُحِبُّونَهُمْ كَحُبِّ اللَّهِ

और लोगों में से वो भी है जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को छोड़ कर उसके मद्दे मुक़ाबिल बनाते है, और फिर यह लोग इनसे अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ कि मुहब्बत जैसी मुहब्बत करते है”।

तो नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने इतना सख़्त लफ़्ज़ इस्तेमाल किया कि तुमने मुझे अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का निद्द (मद मुक़ाबिल) बना दिया? हालांके ज़ाहिर है कि इन सहाबी رَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ के हाशियाऐ ख़्याल में भी यह बात नहीं हो सकती थी। लेकिन चूंके उनका यह जुम्ला वहम पैदा कर सकता था और मसावात की शक्ल ज़हन में आ सकती थी , लिहाज़ा आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने सख़्ती से टोक दिया। इसलिए कि मश्यत तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की है। आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की शान तो यह है कि

إِنَّكَ لَا تَهْدِي مَنْ أَحْبَبْتَ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ يَهْدِي مَن يَشَاءُ ۚ وَهُوَ أَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِينَ

“(ऐ नबी صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ!) आप हिदायत नहीं दे सकते जिसको चाहें (यह आपके इख़्तियार में नहीं है), बल्कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही हिदायत देता है जिसको चाहता है”।(अल क़सस:56)

तीसरी बात जो मैं करने लगा हूं वो ज़रा संवेदनशील (sensitive) बहस है। क़ुरआन मजीद में न सिर्फ़ नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरीयत को नुमायां किया गया बल्कि अगर कहीं आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से बतकाज़ाए बशरी मामूली से ख़ता या चूक भी हुई (ऐसे अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करते हुए भी ज़बान लड़खड़ाती है) तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने आपصَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को टोका और गिरफ़्त फ़रमायी और इस गिरफ़्त को हमेशा हमेश के लिए क़ुरआन मजीद का जुज़ बना दिया, ताकि तमाम कलमा गो, तमाम उम्मती हमेशा पढ़ते रहें कि यह गिरफ़्त हुई थी मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की। चुनांचे सूरह अबस में इर्शाद हुआ:

عَبَسَ وَتَوَلَّىٰ ﴿1﴾ أَن جَاءَهُ الْأَعْمَىٰ ﴿2﴾ وَمَا يُدْرِيكَ لَعَلَّهُ يَزَّكَّىٰ ﴿3﴾ أَوْ يَذَّكَّرُ فَتَنفَعَهُ الذِّكْرَىٰ ﴿4﴾ أَمَّا مَنِ اسْتَغْنَىٰ ﴿5﴾ فَأَنتَ لَهُ تَصَدَّىٰ ﴿6﴾ وَمَا عَلَيْكَ أَلَّا يَزَّكَّىٰ ﴿7﴾ وَأَمَّا مَن جَاءَكَ يَسْعَىٰ ﴿8﴾ وَهُوَ يَخْشَىٰ ﴿9﴾ فَأَنتَ عَنْهُ تَلَهَّىٰ ﴿10﴾ كَلَّا إِنَّهَا تَذْكِرَةٌ ﴿11﴾ فَمَن شَاءَ ذَكَرَهُ ﴿12﴾

उन्होंने त्योरी चढ़ाई और मुँह फेर लिया, (1) इस कारण कि उनके पास अन्धा आ गया। (2) और आपको क्या मालूम शायद वह स्वयं को सँवारता-निखारता हो (3) या नसीहत हासिल करता हो तो नसीहत उसके लिए लाभदायक हो? (4) रहा वह व्यक्ति जो धनी हो गया है (5) आप उसके पीछे पड़े है - (6) हालाँकि

वह अपने को न निखारे तो आप पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं आती - (7) और रहा वह व्यक्ति जो स्वयं ही आपके पास दौड़ता हुआ आया, (8) और वह डरता भी है, (9) तो आप उससे बेपरवाई करते है (10) कदापि नहीं, वे (आयतें) तो महत्वपूर्ण नसीहत है - (11) तो जो चाहे उसे याद कर ले - (12)

इसी तरह ग़ज़वहे उहद का वाक़्या ज़हन में लाइए जिस पर रसूलुल्लाह ﷺ की गिरफ़्त हुई, हालांके आप ﷺ में वो पहाड़ जैसी अज़ीमत थी कि कोहे हिमालय भी जिस पर रश्क करे। यौमे ताइफ़ में यह अज़ीमते मुहम्मदी ﷺ ख़ुब ज़ाहिर होती है। पत्थराव से जिस्म लहू लहान है, ज़ैद बिन हारिसा رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ के सिवा कोई जां निसार नहीं है। अंदाज़ा कीजिए कि साए की तरह आप ﷺ के साथ रहने वाले हज़रात अबू बकर رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ भी सफ़रे ताइफ़ में आप ﷺ के हमराह नहीं थे। आप ﷺ का इस्तहाज़ाए हवा, फ़िक़रे चुस्त किये गए, ताइफ़ के तीनों रूए साने एक से एक बढ़ कर कलेजे को छेदने वाले अलफ़ाज़ इस्तेमाल किये। इस पर मुस्तज़ादिया के ओबाशों ने जिस तरह आप ﷺ को जिस्मानी तशद्दुद का निशाना बनाया वो नाक़ाबिले बयान है। लेकिन उस वक़्त भी जबकि आप ﷺ को इख़्तियार दिया गया कि अगर आप ﷺ चाहें तो मलकुल जबाल इन दोनों पहाड़ों को आपस में टकरा दे और ताइफ़ के रहने वाले इनके माबेन सुरमा बन जाएं, अज़ीमते मुहम्मदी ﷺ कोई बद दुआइया कलमा ज़बान से निकालने के लिए तैयार नहीं हुई। बल्कि ज़बाने रहमत से इर्शाद हुआ कि क्या अजब के अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ इनकी आइन्दा नस्लों को हिदायत दे दे! लेकिन ग़ज़वहे उहद में जब दन्दाने मुबारक शहीद हुए और चहरा-ए-अनवर लहू लहान हुआ तो ज़बान से यह जुमला निकल गया

((كَيْفَ يُفْلِحُ قَوْمٌ خَضَبُوْا وَجْهَ نَبِيِّهِمْ بِالدَّمِ وَهُوَ يَدْعُوْهُمْ اِلَى اللّٰهِ)) ''वो क़ौम कैसे फ़लाह पाएगी जिसने अपने नबी के चेहरे को ख़ून से रंग दिया, जबकि वो इन्हें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तरफ़ पुकार रहा था!”

हालांके यह कोई बददुआ नहीं थी कि ऐ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ! इनको हिदायत न दीजिओ, बल्कि यह एक तबसरह था। लेकिन इस पर गिरफ़्त हो गई और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने यह आयत नाज़िल फ़रमा दी

لَيْسَ لَكَ مِنَ الْأَمْرِ شَيْءٌ أَوْ يَتُوبَ عَلَيْهِمْ أَوْ يُعَذِّبَهُمْ فَإِنَّهُمْ ظَالِمُونَ ﴿128﴾

“(ऐ नबी صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ!) आपके हाथ में कोई इख़्तियार नहीं है (हिदायत और ज़लालत का सर रिश्ता अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हाथ में है) वो चाहेगा तो उनकी तौबा क़बूल करेगा और अगर चाहेगा तो उन पर अज़ाब भेज देगा”।(आले इमरान:128)

यह फ़ैसला ऐ नबी صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ! आपके हाथ में नहीं है, हमारे हाथ में है। आप अपना काम कीजिए और इनके अंजाम को हमारे हवाले कीजिए।

إِنَّ إِلَيْنَا إِيَابَهُمْ ﴿25﴾ ثُمَّ إِنَّ عَلَيْنَا حِسَابَهُم ﴿26﴾

“यक़ीनन हमारी तरफ़ इन सबको लौट कर आना है, फिर हमारे ज़िम्मा है इनका हिसाब”।(अलग़ाशियह: 25)

और तारिख़ की इस हक़ीक़त को देखिए कि इस पूरे हादसाए फ़ाजिआ का जो सबसे ज़्यादा ज़िम्मादार शख़्स हो सकता था, यानी ख़ालिद बिन वलीद, इसी को अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने लिसाने मुहम्मदी صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से ख़िताब दिलवाया ((خَالِدٌ سَيْفٌ مِنْ سُيُوفِ اللّٰهِ)) “ख़ालिद तू अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तलवारों में से एक तलवार है”। आलमे असबाब में तो ग़ज़वहे उहद में मुसलमानों की फ़तह को शिकस्त में बदने वाले ख़ालिद बिन वलीद ही थे, लेकिन बाद में अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इन्हें मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के जां निसारों में शामिल फरमा दिया। बहरहाल क़ुरआन मजीद ने इन बातों को नुमायां किया है तो हिक्मते बालिग़ा के तहत किया है। ऐसे मक़ामात से गुज़रते हुए क़ारी के दिल में यह बात आती होगी कि अगर यह चीज़ें क़ुरआन में न होतीं तो क्या हर्ज था। हमें इन आयात का तर्जुमा करते हुए मुश्किल पैश आती है और हमारी ज़बान लड़खड़ाती है। एक जगह इर्शाद है

وَإِن كَادُوا لَيَفْتِنُونَكَ عَنِ الَّذِي أَوْحَيْنَا إِلَيْكَ لِتَفْتَرِيَ عَلَيْنَا غَيْرَهُ ۖ وَإِذًا لَّاتَّخَذُوكَ خَلِيلًا ﴿73﴾ وَلَوْلَا أَن ثَبَّتْنَاكَ لَقَدْ كِدتَّ تَرْكَنُ إِلَيْهِمْ شَيْئًا قَلِيلًا ﴿74﴾

“और (ऐ नबी صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ!) यह लोग तो दरपे थे इसके कि आपको बचला दें इस वही से जो हमने आपकी तरफ़ नाज़िल की है ताकि आप हमारे नाम पर अपनी तरफ़ से कोई बात गढ़ लाएं, और तब तो यह लाज़िमन आपको अपना दोस्त बना लेते। और अगर हम आपके पाऊं जमाए न रखते तो आप तो उनकी तरफ़ किसी दर्जे में माइल हो ही जाते।”

और अगली आयत नंबर 75 में फिर इस पर तब्सरा हुआ है:

إِذًا لَّأَذَقْنَاكَ ضِعْفَ الْحَيَاةِ وَضِعْفَ الْمَمَاتِ ثُمَّ لَا تَجِدُ لَكَ عَلَيْنَا نَصِيرًا ﴿75﴾

"अगर ऐसा हो जाता तो हम लाज़िमन आपको दोहरी सज़ा देते दुनिया की और दोहरी सज़ा देते मोत की , फिर आपको हमारे मुक़ाबले में अपने लिए कोई मददगार (और कोई छुड़ाने वाला) न मिलता"।

मक़सूद यह बताना है कि चौदह सौ बरस बीत जाने के बावजूद मुहम्मद ﷺ की शख़्सियत उसी तरह शिर्क की आमेज़िश से पाक और साफ़ है। आप ﷺ बशर हैं और रसूल हैं। आप ﷺ अब्दुहू भी हैं और रसूलुहू भी हैं। आप ﷺ अब्दे कामिल भी हैं और रसूले कामिल भी।

इस शेर में कितनी बड़ी हक़ीक़त बयान हुई है:

اَلرَّبُّ رَبٌّ وَاِنْ تَنَزَّلْ
وَالعَبْدُ عَبْدٌ وَاِنْ تَرَقّٰی

"रब रब ही है चाहे वो कितना ही नज़ूले इज्लाल फ़रमा ले, और बन्दा बन्दा ही है ख़्वाह वो कितना ही बुलंद मक़ाम पर पहुंच जाए"।

चौदह सौ बरस गुज़रने के बावजूद यह इम्तियाज़ क़ायम है, हालांके इस उम्मत में अपने नबी ﷺ के साथ मुहब्बत और अक़ीदत में किसी ज़माने में कोई कमी नहीं रही है। बहरहाल यह हिक्मते ख़ुदावन्दी के तहत है, और यह लाज़मी नतीजा है ख़त्मे नबुवत का। लेकिन इसके असबाबे ज़ाहिरी में से पहला यह है कि क़ुरआन मजीद ने नबी- ए-अकरम ﷺ की बशरीयत पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया है और इसे बहुत नुमायां किया है। दूसरे यह के आप ﷺ ने अगर कहीं सहबाए कराम رَضِيَ اللّٰهُ عَنْهُ में कोई ऐसा रुजहान देखा कि जिससे देखने वाले को मुग़ालता हो सकता था तो इस पर आप ﷺ ने नकीर फ़रमाई। और तीसरे यह के जहां कहीं भी बर बनाए तबअ बशरी आप ﷺ से कोई ख़ता या चूक होती थी, अगरचे वो जानिबे ख़ैर ही होती थी, तो उस पर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तरफ़ से सख़्त गिरफ़्त होती। यहां में किसी मुग़ालते के सद्द बाब के लिए वज़ाहत कर दूं के नबीए पाक ﷺ की ग़लती के लिए "ख़ता" का लफ़्ज़ मोज़ूं तरीन है। इसलिए के ख़ता में नियत को दख़ल नहीं होता। इस लफ़्ज़ का सबसे नुमायां इस्तेमाल "निशाने का ख़ता हो जाना"। अब निशांची की तो निशाना लगाने की इंतिहाई कोशिश होती है, इसकी नियत यह नहीं होती है कि निशाना इधर उधर नहीं हो, लेकिन बाज़ औक़ात निशाना ख़ता हो जाता है। और यह इसके इरादे और नियत से बिल्कुल बाहर का मामला है। दुसरी बात यह कि ख़ता में नफ़सियानियत नहीं होती बल्कि तलब होती है। यानी नबी से ख़ता होती है

तो जानिबे ख़ैर में होती है, जानिबे शर में नहीं होती। सूरह अबस के वाक़्ये को पैशे नज़र रखिए कि यह सारा मामला दीन की तब्लीग़ के लिए था, दीन की अक़ामत के लिए रास्ता निकालना मक़सूद था। नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने चाहा के इन चोधरियों और सरदारों की तरफ़ तवज्जो और अलतफ़ात करूंगा तो इनमें से अगर एक भी ईमान ले आता है तो वो हज़ारों के बराबर हो जाएगा। यही वजह है कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने झोली पसार पसार कर दुआ की है कि परवरदिगार! उमर बिन हशाम या उमर बिन अल ख़ताब में से एक को तो ज़रूर इस्लाम की तौफ़ीक़ अता फ़रमा दे! इसलिए कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ जानते थे कि इनमें से एक जो है वो एक लाख के बराबर है। एक ईमान ले आएगा तो दीन को तक़्वियत पहुंचेगी। तो यह सारा मामला महज़ दीन के लिए था, इससे मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को معاذاللہ कोई अपनी ज़ाती आसानी नहीं थी, कोई अपनी ज़ाती क़ुदरत व मन्ज़िलत बढ़ानी मक़सूद नहीं थी। इन बड़ों की तरफ़ अलतफ़ात इसलिए नहीं था कि इनकी दौलत की तरफ़ (معاذاللہ)आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की कोई हरीसाना निगाह थी । बल्कि यह दीन की बेहतरी के लिए और उन इंसानों की मसलहत के लिए था जो चक्की के पाटों में पिसे हुए थे। आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने चाहा के अगर ऐसे चन्द बाअसर लोग ईमान ले आएं तो इनको भी रिलीफ़ मिलेगा, इन्हें भी सहारा मिलेगा, इनको क़ुव्वात और तक़्वियत हासिल होगी।

बहरहाल क़ुरआन ने इन चीजों को जिस तरह नुमायां किया और जो सख़्त अंदाज़े ख़िताब बरता है दरहक़ीक़त इस वजह से है कि मक़ामे अब्दियत में इम्तियाज़ क़ायम रहे। और यह सूरते हाल अल्हम्दुलिल्लाह चौदह सौ साल गुज़रने के बावजूद बरक़रार रही है। बाक़ी यह के हमारे हां अगर कुछ औलियाउल्लाह और सुफ़िया की अक़ीदत में कुछ ग़लू हुआ है तो जान लीजिए के "हाथी के पाऊं में सबका पाऊं" के मिस्दाक़ अगर रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का मक़ाम यह है जो क़ुरआन ने बयान फ़रमाया तो किसी और का इनसे ऊंचा मक़ाम कयोंकर हो जाएगा? किसे बाशद! बड़े से बड़े पीर, बड़े से बड़े सुफ़ियाअ और बड़े से बड़े औलियाउल्लाह का मक़ाम भी मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के सामने ऐसे है जैसे सूरज के सामने सितारे हों, इनसे ज़्यादा इनकी कोई हक़ीक़त नहीं। हमारे हां जो मुग़ालते फैले हुए हैं वो महज़ इसी नौइयत के हैं जैसे मैंने बताया, कि जुहलाअ, शोअरा, नअत गोओं और वाअज़ों ने अपने ग़लूए बयान में यह शकलें इख़्तियार करली है। बद क़िसमती से इसमें

अवतार (Incarnation) का अक़ीदा भी आ गया है और हमाउस्त (Pantheism) भी आ गया है और इसमें "बग़ैर ऐन के इक अरब" से ख़ुदा का ऐहाम भी पैदा कर दिया गया है। आप इन सारी चीज़ों को इसी खाते में रखिए और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का शुक्र अदा कीजिए कि चौदह सौ बरस बीत जाने के बावजूद भी इस उम्मते मुस्लिमा के किसी भी मुस्तनद फ़िर्क़े के मुस्तनद अक़ाइद की फ़हरिस्त में "शिर्क फ़िज़्ज़ात" की यह दोनों सूरतें नहीं है। यानी न तो किसी को ख़ुदा या ख़ुदा का बेटा और बेटी क़रार दिया गयी और न हमाउस्त और अवतार के अक़ाइद पैदा हुए।

मस्अला ए नूर व बशर

शिर्क की दूसरी क़िस्म "शिर्क फ़िस्सिफ़ात" की बहस शुरू करने से पहले में एक अहम इल्मी नुक़्ते पर बात करना चाहता हूं। हमारा हां एक मस्अला मज़हबी बहस व नज़ाअ का मोज़ूअ बना हुआ है। वो मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की "बशरीयत" और "नूर" का मस्अला है कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ बशर थे या नूर। अवमी सतह पर जो मज़हबी जलसे होते हैं इनमें अक्सर व बैश्तर इसी मस्अले पर गुफ़्तगू होती है, धुवां दार तक़रीरें होती हैं जिनमें जोश व ख़रोश और ग़ैज़ व ग़ज़ब का इज़्हार होता है। एक गिरोह रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरीयत की नफ़ी और नूरानियत के इस्बात पर और दूसरा गिरोह वो आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की नूरानियत की नफ़ी और बशरीयत के इस्बात पर बहुत ज़्यादा ज़ोर लगाता है जिससे मुनाज़िरे और मुबाहसे का बाज़ार गर्म हो जाता है और एक नज़ाअ का आलम पैदा हो जाता है। लेकिन हक़ीक़त यह है कि इस मस्अले में नज़ाअ का क़त्अन कोई पहलू नहीं है। इस सिलसिले में महज़ खिंचतान और जोशीली तक़रीरों की वजह से बात बिगड़ती है और फ़रीक़ैन में बाहम शिद्दत और तलख़ी बढ़ती चली जाती है।

जान लीजिए कि नबी-ए-करीम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के मामले में न यह कहना दुरुस्त है कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ बशर नहीं थे बल्कि नूर थे और न यह कहना दुरुस्त है कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ नूर नहीं थे बल्कि बशर थे। दोनों बातें यक्सां ग़लत हैं, अस्ल हक़ीक़त यह है कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ बयक वक़्त बशर भी थे और नूर भी थे। और यह मामला सिर्फ़ रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का नहीं है बल्कि मेरा और आपका और हर इंसान के अंदर इसके वजूद के दो हिस्से हैं। एक इसका "हेवानी" वजूद है। वो ख़ाकीउल असल है जो इस ज़मीन

से बना है। वो अपनी असल के एतबार से ज़ुलमानी है। इसमें तारीकी है, इसमें पस्ती का रुज्हान है, इसमें बुराई का मिलान है। क़ुरआन मज़ीद में हज़रत यूसुफ़ عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के अल्फ़ाज़ नक़्ल हुए हैं

وَمَا أُبَرِّئُ نَفْسِي ۚ إِنَّ النَّفْسَ لَأَمَّارَةٌ بِالسُّوءِ

"और अपने नफ़्स की बराअत नहीं कर रहा हूं, यक़ीनन नफ़्स तो बुराई पर उभारता है"।

लेकिन इंसान सिर्फ इस पस्ती और ख़ाकी उल असल वजूद ही का नाम नहीं है, बल्कि इसके वजूद का दूसरा हिस्सा "रूह" है।

नुक़्ताए नूरी के नामे औ ख़ुदी
ज़ेरे ख़ाके मा शरारे ज़िंदगी

इंसाने अव्वल को आदम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ बनाने वाली चीज़ यही रूहे ख़ुदा वंदी थी जो उनमें फूंकी गई। और वो रूहे ख़ाकी और ज़ुल्मानी नहीं है, बल्कि नूरानी हक़ीक़त रखने वाली शै है। वो मलाइका की हम पल्ला ही नहीं मलाइका की मस्जूद है। मलाइका नूरीउल असल हैं तो क्या रूह ख़ाकी उल असल है ? नहीं, रूहे ख़ाकी और ज़ुल्मानी नहीं है, बल्कि नूरानी है। बक़ौल इक़बाल:

ज़ोके़ तजली भी इसी ख़ाक में पंहां
ग़ाफ़िल तू निरा साहिबे अदराक नहीं है!

हवासे ख़मसा यानी देखना, सुनना, सूंघना, चखना और छूना तो हेवानात में भी हैं! इंसान ने भी अपनी हक़ीक़त अगर यही समझी तो उसने गोया अपनी असल अज़्मत को नहीं पहचाना। अदराक तो अस्ल में अपने से बाहर की किसी शै को महसूस करना है, जबकि रौशनी तो ख़ुद अपना ज़हूर चाहती है, अपनी तजली चाहती है। तो इंसान की हक़ीक़त यह है कि इसके वजूद के दो हिस्से हैं, एक इसका यह हैवानी वजूद है, जो ख़ाकी उल असल है, ज़ुलमनी उल असल है। इसका मीलान पसती और गुनाह की तरफ़ है। और एक इसका रूहानी वजूद है जो नूरानी उल असल है। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने फ़रिश्तों से फ़रमाया था

فَإِذَا سَوَّيْتُهُ وَنَفَخْتُ فِيهِ مِن رُّوحِي فَقَعُوا لَهُ سَاجِدِينَ ﴿29﴾

"पस जब मैं इसे (आदम को) बना संवार लूं और इसमें अपनी रूह में से फूकूं तो गिर पड़ना इसके सामने सजदे में"।(सुरह हिज्र)

यहां रूह की निस्बत अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने ख़ुद अपनी तरफ़ की है।

तो यह है हमारा वो नूरानी अन्सर जो हर एक इंसान में है। लेकिन ''گر حفظِ مراتب نہ کنی زندیقی''
के मिसदाक़ सब का नूर बराबर नहीं होता है। किसी का महज़ एक टिमटिमाता हुआ दिया है। किसी की इस नूरानियत पर इसके नफ़्स की ज़ुल्मानियत इस तरह छाई गई है कि वो नूरे माअदूम के दरजे में है। यानी इसकी फ़ितरत का नूर बुझ चुका है, जबकि किसी का वो नूर इस क़द्र ज़्यादा होता है कि क़ुरआने करीम ने इसकी तम्सील यूं बयान की है

يَكَادُ زَيْتُهَا يُضِيٓءُ وَلَوْ لَمْ تَمْسَسْهُ نَارٌ ۚ نُّورٌ عَلَىٰ نُورٍ

“(किसी की फ़ितरत का नूर इतना साफ़ और शफ़ाफ़ है कि) भड़क उठने को बेताब है, चाहे इसे आग ने छुआ तक न हो। रौशनी पर रौशनी है।” (अन नूर:35)

यह वो नूर जो हज़रत अबू बकर सिद्दीक़رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ की शख़्सियत में मौजूद था। अभी वही का आग़ाज़ भी नहीं हुआ था, लेकिन इनके अन्दर अख़्लाक़े हुस्ना के अन्वार पहले से मौजूद थे। ऐसे ही तमाम सिद्दीक़ीन और अम्बिया عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के अन्दर नूरे फ़ितरत मौजूद होता है। अब इस तनाज़ुर में देखिए तो नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की शख़्सियते मुबारका चूंके बुलंद तरीन है तो आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की नूरानियत भी इतनी कामिल है कि इसने ख़ाकी वजूद की ज़ुल्मानियत को बिल्कुल माअदूम कर दिया है। इस माअना में अगर कहा जाए कि नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ नूरे मुजस्सिम हैं तो ग़लत नहीं है।

तो यह दोनों चीज़ें एक ही वक़्त में सहीह हैं। नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ एक ही वक़्त में बशर भी हैं और नूर भी हैं। आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बशरियत का कौन इंकार करेगा! आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की विलादत हुई है जैसे किसी इंसान की विलादत होती है। आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के भी वही दो हाथ और दो पैर थे। वही इंसानी ख़ून आप के वजूद में भी सरायत किये हुए था और गरदिश कर रहा था। ताइफ़ में आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर पत्थराओ हुआ है तो ज़ख़्मों में से ख़ून रिसा है। मैदाने उहद में जब तलवार आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के चेहरा-ए-मुबारक पर लगा है तो ख़ून का फ़व्वारह छुटा है। इसी तरह आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने शादी की है और आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के घर औलाद हुई है। लेकिन इस सबके बावजूद नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की नूरानियत की नफ़ी हरगिज़ न कीजिए ! आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की नूरानियत की नफ़ी दरहक़ीक़त इस दौर का माद्दा परस्ताना फ़िक्र है जो मेरी आज की बहस का असल मोज़ूअ

है। हमने माद्दा परस्ताना फ़िक्र अपने ज़हनों पर इतना मसल्लत कर लिया है कि हम रूह की हक़ीक़त और इसके जुदागाना तशख़्ख़ुस से , या तो बिल्कुल मुन्किर हो गए है या इसका ज़बान पर ज़िक्र लाते हुए हमें हिजाब महसूस होता है। बक़ौले अकबर इलाहाबादी :

रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने में

कि अकबर नाम लेता है ख़ुदा का इस ज़माने में !

कि रूहानियत की बातें करते हो? रूह की बात करते हो? रूह को कोई अलैहदा वजूद मानते हो? तो यह चीज़ें हमारे फ़िक्र और नज़रियात के दायरे से इस तौर से बाहर चली गई हैं कि अब हम समझते हैं कि इंसान तो बस इसी हैवानी वजूद का नाम है। हम अपने इस वजूदे हैवानी ही को असल इंसान समझे बैठे हैं, इसलिए नूरानियत की नफ़ी हो रही है।

इस बात को यूं भी समझा जा सकता है कि हमारा जो नूरानी अन्सर है, ईमान और अमले सालेह से इसकी नूरानियत में इज़ाफ़ा होता है और इसके बरअकस गुनाहों और नफ़्सानियत से यह नूर बुझता चला जाता है। कुरआन मजीद में सूरतुल हदीद और सूरतुल तहरीम में दो जगह मैदाने हश्र का नक़्शा खीचा गया है कि उस दिन अहले ईमान की शान यह होगी कि :

يَوْمَ تَرَى الْمُؤْمِنِينَ وَالْمُؤْمِنَاتِ يَسْعَىٰ نُورُهُم بَيْنَ أَيْدِيهِمْ وَبِأَيْمَانِهِم بُشْرَاكُمُ الْيَوْمَ جَنَّاتٌ تَجْرِي مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ خَالِدِينَ فِيهَا ۚ ذَٰلِكَ هُوَ الْفَوْزُ الْعَظِيمُ ﴿١٢﴾

"उस दिन आप मोमिन मर्दों और औरतों को देखेंगे कि उनका नूर उनके आगे आगे और उनके दाएं जानिब दौड़ रहा होगा। (उनसे कहा जाएगा) आज बशारत है तुम्हारे लिए ऐसे बाग़ात की जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, इनमें वो हमेशा रहेंगे। यही बड़ी कामयाबी है" (अलहदीद : 12)

आगे मुनाफ़िक़ीन के बारे में फ़रमाया गया:

يَوْمَ يَقُولُ الْمُنَافِقُونَ وَالْمُنَافِقَاتُ لِلَّذِينَ آمَنُوا انظُرُونَا نَقْتَبِسْ مِن نُّورِكُمْ قِيلَ ارْجِعُوا وَرَاءَكُمْ فَالْتَمِسُوا نُورًا

"उस दिन मुनाफ़िक़ मर्दों और औरतों का हाल (जो दुनिया में चराग़ गुल करके जाएंगे) यह होगा कि वो अहले ईमान से इस्तदआ करेंगे : ज़रा हमारी तरफ़ देखो (ज़रा हमें मोहलत दो), ताकि हम तुम्हारे नूर से इस्तफ़ादा करें। कहा जाएगा लौट जाओ पीछे की तरफ़ (अगर हो सकता है तो दुनिया में वापस जाओ) और इस नूर की तहसील करके आओ।" (अलहदीद : 13)

सूरतुत्तहरीम में है:

﴿ نُورُهُمْ يَسْعَىٰ بَيْنَ أَيْدِيهِمْ وَبِأَيْمَانِهِمْ يَقُولُونَ رَبَّنَا أَتْمِمْ لَنَا نُورَنَا وَاغْفِرْ لَنَا ۖ إِنَّكَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴾

"उनका नूर उनके आगे आगे और उनके दाएं जानिब होगा और वो कह रहे होंगे कि 'ऐ हमारे रब! हमारा नूर हमारे लिए मुकम्मल कर दे और हमसे दरगुज़र फरमा, यक़ीनन तू हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है'

इस नूर के बारे में नबी-ए-अकरम ﷺ का इर्शादे गिरामी है कि क़यामत के दिन किसी का नूर बस इतना होगा कि इससे सिर्फ़ इसके क़दमों के आगे रौशनी हो जाएगी , और किसी का नूर इस क़द्र होगा कि इसकी रौशनी मदीना मुनव्वरह से सन्आ तक पहुंचेगी। यानी उस रोज़ किसी का नूर बहुत थोड़ा होगा कि बस इससे क़दमों के आगे आगे रौशनी होगी। और क़यामत के दिन यह नूर भी बहुत ग़नीमत होगा। जिसको नसीब हो गया। इसलिए कि अंधेरे में एक टार्च भी बहुत ग़नीमत होती है जिससे आप बिल आख़िर मंज़िल तक पहुंच सकते हैं। जबकि किसी का नूर उस रोज़ बहुत ज़्यादा होगा जिससे हर सो चराग़ां हो जाएगा। यह हिफ़्ज़े मरातिब है। इस तनाज़ुर में देखिए तो मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ एक ही वक़्त में "बशर" भी हैं और "नूर" भी हैं। और यही मामला हम सबका भी है। हमारा एक रूहानी वजूद है जो नूरी-उल-असल है और एक माद्दी वजूद है जो ख़ाकी-उल-असल है और हमारी शख़्सियतों में इन दोनों का इम्तिज़ाज है। किसी की ज़ुल्मानियत इस नूर पर ऐसे ग़ालिब आ गई है कि नूरे माअदूम हो गया है और किसी की ज़ुल्मानियत पर इसकी नूरानियत का इतना ग़लबा हो गया है कि इसकी ज़ुल्मानियत काफ़ूर हो गई है।

इसकी हक़ीक़त को हदीसे नबवी ﷺ की रौशनी में इस तरह समझ लीजिए कि नबी-ए-अकरम ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

((مَا مِنْكُمْ مِّنْ اَحَدٍ اِلَّا وَقَدْ وُكِّلَ بِهٖ قَرِيْنُهٗ مِنَ الْجِنِّ)) قَالُوْا :وَاِيَّاكَ يَارَسُوْلَ اللّٰهِ؟ قَالَ:

((وَاِيَّایَ اِلَّا اَنَّ اللّٰهَ اَعَانَنِیْ عَلَيْهِ فَاَسْلَمَ فَلَا يَاْمُرُنِیْ اِلَّا بِخَيْرٍ))

"तुम में से कोई भी ऐसा नहीं जिसके हमराह एक शैतान साथी नहीं दिया गया हो।" सहाबा-ए-किराम رَحِمَهُ اللّٰهِ ने (बड़ी हिम्मत करके) दर्याफ़्त किया 'ऐ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के रसूल ﷺ! क्या आप ﷺ भी ?' आप ﷺ ने फ़रमाया: "हां मैं भी, मगर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इसके मुक़ाबले में मेरी मदद फ़रमाई तो मैंने इसे मुसलमान बना लिया। अब वो मुझे सिवाए भलाई के कोई और मश्वरह नहीं देता"।

यह रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का बात को समझाने का एक अंदाज़ा था। बहरहाल रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के अंदर भी वो नफ़्स तो था। आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का बतन-ए-मुबारक भी खाने को मांगता था। भूख का अहसास मुहम्मद صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को भी होता था। भूख की वजह से आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर भी नक़ाहत तारी होती थी। ताइफ़ में पत्थराओ की वजह से जब बहुत ज़्यादा ख़ून बहा तो आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर नक़ाहत तारी हुई और आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ बैठ गए। इसी तरह उहद में भी बहुत ज़्यादा ख़ून बहने की वजह से आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ पर नक़ाहत तारी हुई और आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ बेहोश हो गए। आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के साहबज़ादे हज़रत इब्राहीम का जब इंतक़ाल हुआ तो आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की आंखों में आंसू आ गए, इसलिए कि इंसानी अवातिफ़ व मीलानात और अहसासात व जज़्बात आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की शख़्सियत में बतमाम व कमाल मौजूद थे। लेकिन इन चीजों की वजह से कभी आप ﷺ से معاذالله ख़ुदा की मअसियत का सदूर मुम्किन नहीं हुआ। आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को तमाम बशरी तक़ाज़ों और आसारे तबीई पर इस क़द्र क़ाबू था कि कोई भी चीज़ आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कुछ नहीं करा सकी।

मुसलमानों में अवतार का तसव्वुर

गुज़िश्ता सफ़्हात में इस बात की तरफ़ इशारह किया गयी था कि हिंदुओं के मत मे नौ अवतार थे, एक दसवां अवतार अपने आपको मुसलमान कहने वालों ने उन में शामिल कर लिया है। अब इस बात की ज़रा तफ़्सील जान लीजिए । दरअस्ल शीया मत की बहुत सी शाख़ें हैं। हमारे क्षेत्र में जो मारूफ़ शिया हैं वो "असना अशरी" हैं यानी पहले बारह इमामों के मानने वाले। इनके ख़्याल में बारहवें इमाम ग़ायब हो गए जो इमामे मुन्तज़र कहलाते हैं और वो उनके इन्तज़ार में हैं कि दोबारह आएंगे। छटे इमाम पर एक शाख़ अलैहदह हो गई जो "शश इमामिया" कहलाते है। यानी पहले छे इमाम तो "अस्ना अशरी" और "शश इमामिया" के माबैन मुशतरिक हैं, लेकिन इस्माईल, जो इमामे जाफ़र सादिक़ رَحْمَةُ اللهِ के बड़े साहबज़ादे थे, इनसे इन शश इमामिया वालों की शाख़ अलग हो गई। शश इमामिया वालों की भी आगे चल कर दो शाख़ें हो गईं। एक शाख़ वो है जो हमारे हां "बोहरे" कहलाते है। इनके ग़ालिबन 32 वें इमाम ग़ायब हो गए। ताहिर सैफ़ुद्दीन, जिनका इन्तक़ाल हो गया, और बुरहानुद्दीन (म्रत्यु १४ जनवरी २०१४) जो मुंबई में रहते है, इनके मज़हबी

पैशवा हैं। यह इमाम नहीं कहलाते बल्कि दाई कहलाते हैं। शशइमामिया की दूसरी शाख़ “इस्माईली” है। इनके कहने के मुताबिक़ इनके इमाम ग़ायब नहीं हुए, बल्कि इमामत का सिलसिला तसलसल के साथ चल रहा है। इन वक़्त परिंस करीम आग़ा ख़ान इनके इमामे हाज़िर हैं। यह इमाम को मासूम मानते हैं।

पीर शम्सुद्दीन और दीगर इस्माईली मबल्लीग़ैन के ज़रिए इसमाईलियत की दावत जब हिंदुस्तान में दी गई तो इन मबल्लग़ैन ने दावत व तब्लीग़ के लिए हिक्मते अमली के साथ ही ज़रा अपने अक़ीदे को जोड़ दें तो बात बन जाएगी। हिन्दू अवतार मानते थे, इन्होंने यह कहा कि नो अवतार तुम्हारे हैं और दसवां अवतार एक और आया है और वो हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ हैं। इस मज़हब में “दशम अवतार” यानी दसवां अवतार हज़रत अली رَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ को माना जाता है। अवतार या Incarnation का यह अक़ीदा बा ज़ाबता तौर पर इनके अक़ाइद में शामिल है।

दूसरा काम इन मबल्लग़ैन ने यह कहा के हिन्दुस्तान में नए ईमान वालों पर से शरीअत साक़त कर दी। ज़ाहिर बात है अगर किसी को इस्लाम या दीन की तालीम दी जाए और इसको यह भी मालूम हो कि पांच नमाज़ें भी पढ़नी पड़ेंगी, तीस रोज़े भी रखने पड़ेंगे, तो वो इस्लाम में दाख़िल होने से पहले दस दफ़ा ख़ूब सोचेगा। लेकिन अगर इसे यह कहा जाए कि कोई शरीअत तुम पर लागू नहीं होगी, बस तुम कलमा पढ़ो, तो इसके लिए अब काम आसान हो जाएगा। जैसे सेन्ट पाल ने कहा था। कि बस हज़रत मसीह عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ को मान लो तो तुम्हारे गुनाहों की तरफ़ से वो पैशगी कुफ़्फ़ारह हो जाएंगे, तुम्हारे ऊपर शरीअत का भी बोझ नहीं होगा और हलाल व हराम की क़ैद भी नहीं होगी, चाहे ख़ंज़ीर खाओ और शराब पीओ। चुनांचे इनके हां पहले से जो मुशरिकाना अक़ाइद थे इन पर अमल पेरा रहते हुए अपनी तसलीस बना ली और हज़रत मसीह رَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ को ख़ुदा का बेटा क़रार दे कर इस अक़ीदे से अपने मज़हब को जोड़ दिया। तो इस तरह से सेंट पाल वाली ईसाईयत जंगल की आग की तरह फैल गई। बईना यही काम हिन्दुस्तान में इस्माईली दाईयों ने किया कि शरिअत साक़ित क़रार देदी। लिहाज़ा हमारे आग़ा ख़ानियों के हां नमाज़ रोज़ा वग़ैरह कुछ नहीं है। इनकी मस्जिदें नहीं होतीं, महज़ जमाअत ख़ाने होते हैं और इनकी हैसियत कलबों और चोपाल की है जहां वो आकर बैठते हैं और साथ मिल कर खाना वग़ैरह खाते हैं।

जमाअत ख़ाना इनकी सोशल लाइफ़ का एक मर्कज़ है। बाक़ी यह के शरी अत उनसे साक़त है। अलबत्ता हमारे शुमाली इलाक़े हुन्जह और चतराल में जो इस्माईली आबाद हैं, इनके हां शरीअत मौजूद है। इसलिए कि वो local converts नहीं हैं, बल्कि वो ईरान से आए हुए थे। जबकि बम्बई और काठया वाढ़ वग़ैरह इलाक़े में मक़ामी लोगों ने जो इस्माईलियत क़बूल की है इसमें एक तो शरीअत साक़ित है और दूसरे हज़रत अली رَضِيَ اللَّهُ عَنْهُ (नाऊज़ू बिल्लाह) अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के दसवें अवतार हैं। जैसा के अर्ज़ किया गया, हिन्दुस्तान में नो अवतार पहले से पूजे जा रहे थे, दसवां अवतार हज़रत अली رَضِيَ اللَّهُ عَنْهُ को मन्वा कर इसके साथ जोड़ दिया गया।

शिर्क फ़िस्सिफ़ात (شرک فی الصفات)

अल्हम्दुलिल्लाह हमने अक़सामे शिर्क के हवाले से शिर्क की पहली क़िस्म "शिर्क फ़िज़्ज़ात" का किसी हद तक फ़हम हासिल कर लिया है। अब हम अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى की तौफ़ीक से शिर्क की दूसरी क़िस्म "शिर्क फ़िस्सिफ़ात" की बहस का आग़ाज़ करते हैं। शिर्क फ़िस्सिफ़ात के बारे में इबतदाई तौर पर यह जान लीजिए कि यह मस्अला ज़रा बारीक और इल्मी नौईयत का है और इसमें पैर फिसल जाने का आसानी से अहतमाल है। इसकी वजह यह है कि हमारी ज़बान की तंग दामानी के बाइस सिफ़ात (Adjectives and attributes) के तौर पर जो अलफ़ाज़ हम इस्तेमाल करते हैं वो ख़ालिक़ और मख़्लूक़ के माबैन मुश्तरिक हैं। यानी वही अल्फ़ाज़ हम अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى के लिए इस्तेमाल करते हैं और वही मख़्लूक़ के लिए करते हैं। जैसे के हम कहते हैं कायनात भी मौजूद, ख़ुदा भी मौजूद, मैं भी मौजूद। इस तरह सिफ़्त "वजूद" मुश्तरिक हो गया अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى और मख़्लूक़ के माबैन। अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى भी ज़िंदा, हम भी ज़िंदा, यह चौपाए वग़ैरह भी ज़िंदा। लफ़ज़ "इल्म" का इस्तेमाल

अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى के लिए भी है, अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरआनी (وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ) और बंदों के लिए भी, बल्कि इंसानों में "अल्लामा" भी होते हैं जो सिफ़्ते इल्म का मबालग़े का सीग़ा है। लफ़्ज़ "इरादा" बंदों के लिए भी इस्तेमाल होता है कि "मेरा यह इरादा है" और

अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى के लिए भी के إِنَّمَا أَمْرُهُ إِذَا أَرَادَ شَيْئًا أَن يَقُولَ لَهُ كُن فَيَكُونُ ﴿٨٢﴾ (यासीन:82)। इसी तरह लफ़्ज़ "मश्यत" मुश्तरिक है अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى और मख़्लूक़ के माबैन। जैसे किसी सहाबी-ए-रसूलصَلَّىٱللَّهُعَلَيْهِوَسَلَّمَ की ज़बान से यह अल्फ़ाज़ निकल गए: " مَاشَاءَ اللّٰهُ وَمَا شِئْتَ " (जो अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى की इच्छा और जो आपصَلَّىٱللَّهُعَلَيْهِوَسَلَّمَ की इच्छा) तो नबी-ए-अकरम صَلَّىٱللَّهُعَلَيْهِوَسَلَّمَ ने उनको सख्ती से टोक दिया क्योंकि इस में शिर्क का शाय्बा जन्म ले सकता था। हालाँकि उन सहाबी-ए-रसूल की नीयत में معاذ اللّٰه कोई इस तरह की बात नहीं थी। तो सिफ़ात के लिए जितने अलफ़ाज़ मुस्तअमिल हैं वो सब मुश्तरिक हैं ख़ालिक़ और मख़्लूक़ के माबैन। वो अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَى के लिए भी मुस्तअमिल हैं और मख़्लूक़ात के लिए भी, और इसी

से फ़साद और ग़लती का सारा अहत्माल पैदा होता है। हालांकि जब इन अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के लिए होता है तो इनका मफ़्हूम बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है उस मफ़्हूम से, कि जिस मफ़्हूम में इन अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल मख़्लूक़ात के लिए होता है। लफ़्ज़ मुश्तरिक है जबकि मफ़्हूम जुदा है।

शिर्क फ़िस्सिफ़ात से बचाव का फ़ार्मूला

अब यह समझ लीजिए कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى और इंसानों की सिफ़ात अल्फ़ाज़ मुश्तरिक होने के बावजूद मफ़्हूम व माअना में किस तरह जुदा हैं। तीन चीज़ें अगर मद्द नज़र न रहें और ज़हन में मुस्तहज़र न रहें तो शिर्क का बिला इरादा और बिला शऊर अहत्माल पैदा हो जाएगा। पहली चीज़ यह कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى का वजूद भी क़दीम है और इसकी सिफ़ात भी क़दीम हैं, जबकि मासिवा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى जुम्लाऐ मख़्लूक़ात का वजूद भी हादसात है और सिफ़ात भी हादिस है। जो बड़े से बड़े मुशरिक गुज़रे हैं ख़ुदा को तो इन्होंने भी क़दीम माना है। “तादददे क़दीमाअ” का नज़रया रखने वालों का अक़ीदा था कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى भी क़दीम, रूह भी क़दीम और माद्दह भी क़दीम। कुछ लोगों ने ज़रा रिआयत करते हुए दो हस्तियों को क़दीम माना है कि ख़ुदा भी क़दीम और माद्दह भी क़दीम , जबकि तौहीद यह है कि क़दीम हस्ती सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की है, बाक़ी सबको हदूस ला हक़ है कि पहले नहीं थे, फिर हो गए।

दूसरी चीज़ यह के अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى का वजूद भी ज़ाती है और सिफ़ात भी ज़ाती हैं, जबकि मासिवा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى का वजूद भी अताई है और सिफ़ात भी अताई हैं। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى तो अज़ ख़ुद है, ख़ुद बख़ुद है। कोई और तो इसे वजूद देने वाला नहीं, معاذ الله ثم معاذ الله। इसी तरह इसकी सिफ़ात भी ज़ाती हैं, किसी और की अता करदा नहीं, इसको इल्म किसी और ने नहीं दिया, معاذ الله ثم معاذ الله। जबकि जुम्लाए मख़्लूक़ात का वजूद भी अताई है, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ने ही सबको वजूद अता किया है। बकोल शायर:

लाई हयात आए, क़ज़ा ले चली चले
अपनी ख़ुशी न आए, न अपनी ख़ुश चले

तो यह क़ज़ा हयात तो बस इरादा- ए-ख़ुदावन्दी है 'फ़ैसला-ए-ख़ुदावन्दी है, हुक्म-ए-ख़ुदावन्दी है। उसने चाहा तो हम हो गए। इसी तरह जुम्लाए मख़्लूक़ात की सिफ़ात भी अता ई हैं, ज़ाती नहीं हैं, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ने अता की हैं।

तीसरी चीज़ यह कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की ज़ात भी मत्लिक़ है और सिफ़ात भी मत्लिक़ हैं, जबकि मासिवा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى जुम्लाए मख़्लूक़ात का वजूद महदूद है और सिफ़ात भी महदूद हैं। "मत्लिक़" अरबी ज़बान में "तुआ, लाम, क़ुआ" माद्दे से है जिसका मतलब है आज़ादी, बे क़ैद होना, लामतनाही होना, हुदूद और निहायत से मब्बरा होना। "तलाक़" का मतलब यही कि औरत को निकाह के बंधन से आज़ाद कर दिया जाए। तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى का वजूद और सिफ़ात मत्लक़ लामत्नाही, हुदूद व क़ुयूद और इन्तहा से मबरा हैं। अंग्रेज़ी में अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى को कहा जाता है "The Absolute Being". हम अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की सिफ़ात के बयान के लिए एक ही लफ़्ज़ "कुल" के दामन में पनाह लेते हैं कि

(وَهُوَ بِكُلِّ شَىْءٍ عَلِيمٌ) "वो हर चीज़ का इल्म रखने वाला है"।

और (وَهُوَ عَلَىٰ كُلِّ شَىْءٍ قَدِيرٌ) "वो हर चीज़ पर क़ुदरत रखने वाला है"।

इस हवाले से जान लीजिए कि जब भी कोई लफ़्ज़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के लिए बतौर वसफ़ या सिफ़्त बोला जाए तो मज़्कूरह बाला तीन तसव्वुरात ज़हन में मुतह्ज़िर रहें ।

(1) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की वो सिफ़्त या वसफ़ क़दीम है, इसमें हुदूस का कोई शाएबा नहीं।

(2) वो ज़ाती है, किसी का अता करदा नहीं। और

(3) मुत्लक़ और लामत्नाही है, इसमें कहीं कोई हद्दो निहायत नहीं।

इसके बिल्कुल बरअक्स जब वही लफ़्ज़ हम मख़्लूक़ात में से किसी के लिए बतौर सिफ़्त बोलेंगे तो वहां यह तीन तसव्वुरात मल्हूज़ रहेंगे कि जैसे वो चीज़ ख़ुद हादिस है वैसे ही इसकी वो सिफ़्त भी हादिस है, जैसे इसका वजूद अताई वैसे ही इसकी सिफ़्त भी अताई है और जैसे इसका वजूद महदूद है वैसे ही इसकी सिफ़्त भी महदूद है। तो यह तीनों तसव्वुरात अगर हर वक़्त मद्दे नज़र रहें तो सिफ़ात के मामले में आदमी शिर्क में मुलव्विस नहीं होगा। लेकिन अगर इनमें से किसी में भी ठोकर खाओगे तो "शिर्क फ़िस्सिफ़ात" का रास्ता खुल जाएगा। यह अलजबरे के फ़ारमूले की तरह बिल्कुल वाज़ेह बात है। इसको समझ लिया

जाए तो बड़े बड़े मसाइल और अक़ीदे हल होते चले जाएंगे। यह गोया वो कलीद (key) है कि जिससे हमारे अक़ाइद की बहसों के जो बड़े बड़े ताले पड़े हुए हैं वो खुलते चले जाऐंगे।

दौरे जदीद के सबसे बड़ा शिर्क

अब जो इस दौर का सबसे बड़ा शिर्क है पहले इसे समझ लिया जाए, जिसके बारे में मैं अपने बारे में भी नहीं कह सकता कि मैं इससे बिल्कुल बरी हों। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ही जिसको बचा ले वो बच जाएगा, वरना अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की तौफ़ीक़ के बग़ैर इससे बचना इंसान के बस की बात नहीं। वो शिर्क क्या है ? वो “माद्दह परस्ती (भौतिकवाद , materalism) का शिर्क” है। अस्ल में एक नज़रया, एक ख़्याल और एक मुग़ालता दुनिया में रहा तो हमेशा से है, लेकिन इस दौर में आकर इसने एक फ़लसफ़ा, फ़िक्रे इंसानी के लिए एक बहुत बड़े महवर और मर्कज़ की हैसियत इख़्तियार कर ली है, और वो यह है कि माद्दह की सिफ़ात (Properties of the matter) मुस्तक़िल हैं, दाइम हैं, ग़ैर मुतबदिल (immutable) हैं, इनमें कभी तब्दीली नहीं होती, यह सिफ़ात माद्दे से मनफ़िक नहीं हो सकतीं और क़वानीन तबीई (Laws of the Nature) कभी तब्दील नहीं होते। जब से साइंस का दौरे दोरह, शुहरह और ग़लग़ला हुआ है और जब से ज़हनों पर इसकी छाप बहुत गहरी हो गई है और साइंसी अकतसाफ़ात ने इंसान को मबहूत और मरओब कर दिया है तब से यह फ़िक्र हमारे ज़हनों में पेवस्त हो गया है कि माद्दे की सिफ़ात मुस्तक़िल हैं, दाइम हैं, हमेशा बरोए कार आती हैं, कोई सूरत नहीं है कि माद्दे से इसकी सिफ़्त मनफ़िक हो जाए, बल्कि वो अपनी जगह मुस्तक़िल बिज़्ज़ात है। गोया हमने आज माद्दे को उस मक़ाम पर बिठा दिया है जहां अस्लन अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की ज़ात है। सिफ़ात तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की मुस्तक़िल और दाइम हैं, क़ानून तो इसका है जो कभी नहीं बदलता। शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी ने अपने बच्चे को वसीयत करते हुए लिखा था कि لَا فَاعِلَ فِي الْحَقِيقَةِ وَلَا مُؤَثِّرَ اِلَّا اللّٰهُ “फ़ाइल-ए-हक़ीक़ी और मुअस्सिर-ए-हक़ीक़ी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सिवा कोई नहीं”।

जैसे हज़रत लुक़्मान अपने बेटे को नसीहत कर रहे थे ।

وَإِذْ قَالَ لُقْمَانُ لِابْنِهِ وَهُوَ يَعِظُهُ يَا بُنَيَّ لَا تُشْرِكْ بِاللَّهِ إِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيمٌ ﴿13﴾

“याद करो जब लुकमान ने अपने बेटे से, उसे नसीहत करते हुए कहा ऐ मेरे बच्चे! अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के साथ शिर्क न कीजियो! यक़ीनन शिर्क बहुत बड़ा ज़ुल्म (और बहुत बड़ी न इंसाफ़ी) है।”

अस्ल हक़ीक़त यह है कि आग में जलाने की ताअसीर है, लेकिन यह इसकी ज़ाती नहीं है, बल्कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की वदीअत करदा है और उसी बरोए कार आएगी जब अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहेगा। आग को जलाने की सिफ़त वदीअत करने के बाद معاذ الله अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हाथ बंध नहीं गए कि मैं तो आग में जलाने की सिफ़त पैदा कर चुका । बदबख़तों ने इब्राहीम عَلَيْهِ السَّلَامُ को उठा कर आग में फैंक दिया है तो अब मैं क्या करूं ! معاذ الله ! आग का वसफ़ ज़ाती और मुस्तक़िल नहीं, बल्कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इज़न (आज्ञा) के ताबेअ है। आग उसी वक़्त जलाएगी जब अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का इज़न होगा, अगर नहीं होगा तो नहीं जलाएगी। लिहाज़ा तमाम सफ़ाते माद्दह ताबअ हैं मश्यते ख़ुदा वन्दी के, यह मुस्तक़िल बिज़्ज़ात नहीं हैं। नयू टोनियन फ़िज़िक्स यानी जो फ़िज़िक्स का इब्तदाई दौर था, इसमें बड़ा इज़आन और बड़ा यक़ीन था कि जो क़वानिन हमने दर्याफ़्त कर लिए हैं यह हतमी हैं, इनमें किसी तब्दीली का इम्कान ही नहीं है।

"We have discovered the final truth."

और "क़ानून बक़ाए माद्दह" की वजह से मादह लाज़वाल और ग़ैर क़ानूनी है:

(Matter is indestructible.)

और matter और energy दो जुदा केटागिरीज़ हैं। यह न्यूटन की फ़िज़िकस के मबादयात थे। इनका जब हमारे अक़ाइद, मज़हबी फ़िक्र और ईमानी नज़रयात के साथ तसादम हुआ तो इसका पहला मज़हर यह सामने आया कि अब मुअज्जिज़ात की क्या ताअबीर व ताअवील की जाए ! मग्रिबी और अस्तअमार का यह रेला इतना शदीद था कि बेचारे सरसय्यद अहमद ख़ान जैसा मुख़्लिस भी साबित क़दम न रह सका और इस सैलाब की रू में बह गया।

उस वक़्त एक तरफ़ मग्रिबी तहज़ीब, मग़रिबी इस्तअमार और मग़रिबी कुव्वत थी, इनकी फ़ैजें आ रही थीं। और दूसरी तरफ़ उनका फ़िक्र आ रहा था, साइंस बड़े ज़ोर व शोर के साथ आ रही थी तो इस सैलाब के आगे खड़े रहना आसान नहीं था, लिहाज़ा बड़े बड़ों के क़दम डगमगा गए और इन्होंने कुरआनी ताअलीमात को मग्रिबी फ़िक्र के सांचे में ढालने और इसके मवाफ़िक़ बनाने की कोशिश की। उनके लिए यह मुश्किल पैदा हुई कि पानी तो अपनी सतह बरक़रार रखता है तो फिर यह कैसे मुम्किन है कि असाए मूसा की ज़रब से समन्द्र का पानी फट गया ? सर सय्यद के फ़िक्र की तर्जुमानी की जाए तो वो यह होगी कि यह

तो बड़ी मुसीबत है कि क़ुरआन में ऐसी हल्की बात आ गई, अब हमको दुनिया को क्या मुंह दिखाएं ? हमारे लिए तो इस साइंसी दौर में लोगों से आंखें चार करना मुम्किन नहीं रहा। लिहाज़ा इसकी कोई ऐसी ताअवील और ताअबीर करो कि मज़हब अपनी जगह क़ायम रह जाए और साइंस अपनी जगह क़ायम रह जाए। चुनांचे इन्होंने कहा कि अस्ल में यह तो मद्दो जज़र की बात थी । जिसे मौलवियों ने समझा नहीं और इसे ख़्वाहम ख़्वाह एक अजूबा और मुआज्जिज़ा क़रार दे दिया और एक अफ़साना बना लिया। जवार भाटा समुन्द्र में आता रहता है। कभी समन्द्र recede कर जाता है, पीछे को हट जाता है और ख़ुशकी निकल आती है, कभी समुन्द्र चढ़ाओ पर आता है तो पानी ही पानी हो जाता है। अस्ल में समन्द्र उस वक़्त जज़र पर था जबकि मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ अपनी क़ौम को लेकर निकल गए, और जब फ़िरओन अपने लश्कर समेत गुज़रने लगा तो उस वक़्त समुन्द्र मद्द पर आ गया, लिहाज़ा फ़िरऔन लशकर समेत डूब गया।

यह ताअवील दर हक़ीक़त सरसय्यद की इस सोच की अक्कासी करती है कि वो साइंसी फ़िक्र, इसके रौब व दबदबे और जाह व जलाल के मुक़ाबले में अपने तईन इस्लाम का दफ़ाअ कर रहे थे। इस हवाले से सरसय्यद हमदर्दी के मुस्तहिक़ हैं। दर हक़ीक़त इस मग़्रिबी फ़िक्र का पहला हमला था जो हम पर हुआ, जिसके नतीजे में मुआज्जिज़ात का इंकार हुआ और हर चीज़ का ताअवील करने की कोशिश की गई। इंसान के ज़हन में जब कोई फ़िक्र रासख़ हो जाती है तो बड़ी बड़ी हक़ीक़तें इसकी निगाहों से ओझल हो जाती हैं, वो गोया अंधा हो जाता है और रास्ते के बड़े बड़े पत्थर इसे नज़र नहीं आते। और ऐसा बड़े बड़ों के साथ भी होता है। चुनांचे सर सय्यद अहमद ख़ां पर जब यह फ़िक्र मसल्लत हो गया तो इन्हें क़ुरआन में यह लफ़्ज़ नज़र नहीं आए

فَانفَلَقَ فَكَانَ كُلُّ فِرْقٍ كَالطَّوْدِ الْعَظِيمِ

"पस समन्द्र फट गया तो इसका हर टुकड़ा एक अज़ीमुश्शान पहाड़ की तरह हो गया"।

اِنفَلَقَ يَنفَلِقُ का मतलब है फट जाना। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए क़ुरआन मजीद में فَالِقُ الْإِصْبَاحِ (रात की तारीकी का पर्दा फाड़ने वाला) और فَالِقُ الْحَبِّ وَالنَّوٰى (दाने और गुठली का फाड़ने वाला) के अल्फ़ाज़ आए हैं। तो यहां فَانفَلَقَ क़ा का तर्जुमा मद्दो जज़र किसी सूरत में नहीं

हो सकता। इसी तरह इस आयात के अगले अल्फ़ाज़ فَكَانَ كُلُّ فِرْقٍ كَالطَّوْدِ الْعَظِيمِ "तो (समुन्द्र का) हर टुकड़ा एक अज़ीमुश्शान पहाड़ी की तरह हो गया।" से मद्दो जज़र (ज्वार एवं भाटा) मुराद होने का तो कोई इम्कान ही नहीं, इसकी फ़ितरी मज़्हर (मद्दो जज़र) के साथ सिरे से कोई मुनासिबत नहीं। तो मालूम हुआ कि जब कोई फ़िक्र किसी सबब से इंसान के ज़हन के पर इस तरह मुसल्लत हो जाती है तो बड़ी बड़ी हक़ीक़तें निगाहों से ओझल हो जाती हैं और बईना यही मामला सर सय्यद अहमद ख़ां के साथ पैश आया। और सिर्फ़ इन्ही के साथ नहीं, और भी कई बड़े बड़ों के साथ के साथ यही मामला हुआ है।

मैं यहां एक मिसाल मौलाना सनाउल्लाह अमरतसरी की है। वो रासख़ुलअक़ीदा मुसलमान थे, पक्के अहले हदीस थे, इस्लामी रिवायात, क़ुरआन मजीद और हदीस को थामने वाले थे। लेकिन वो दौर ही ऐसा था कि एक जगह उनके क़दम भी फिसल गए। सूरतुल बक़रह में हज़रत इब्राहीमعَلَيْهِ السَّلَامُ का अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ मकाल्मा नक़ल हुआ है कि इब्राहीमعَلَيْهِ السَّلَامُ ने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से दरख़्वास्त की

رَبِّ أَرِنِي كَيْفَ تُحْيِي الْمَوْتَىٰ

"ऐ मेरे परवरदिगार! मुझे दिखादे तू मुर्दों के कैसे ज़िंदा करता है!"

अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने फ़ौरन सवाल किया: أَوَلَمْ تُؤْمِن "क्या तुम ईमान नहीं रखते?" इस पर इब्राहीम عَلَيْهِ السَّلَامُने अर्ज़ किया: بَلَىٰ وَلَٰكِن لِّيَطْمَئِنَّ قَلْبِي "क्यों नहीं (मैं यक़ीनन ईमान रखता हूं) लेकिन ज़रा मज़ीद एतमिनाने क़लबी का दरकार है।" इसके बाद हुक्म दिया गया

فَخُذْ أَرْبَعَةً مِّنَ الطَّيْرِ فَصُرْهُنَّ إِلَيْكَ "तो चार परिंदे ले लो और इन्हें अपने से हिला लो (मानूस कर लो)।" ثُمَّ اجْعَلْ عَلَىٰ كُلِّ جَبَلٍ مِّنْهُنَّ جُزْءًا ثُمَّ ادْعُهُنَّ يَأْتِينَكَ سَعْيًا "फिर (इन्हें जिबह करके) उनका एक एक टुकड़ा एक एक पहाड़ पर रख दो, फिर उनको पुकारो, वो तुम्हारे पास दौड़ते चले आएंगे।"

यहां فَصُرْهُنَّ إِلَيْكَ "तो इन्हें अपने साथ मानूस कर लो" का मतलब यह है कि वो परिंदे आपको पहचान लें जिनको आपने टुकड़ों में बांटा है और आप उनको पहचान लें कि यह वही परिंदे, कबूतर या तीतर वग़ैरह हैं जिनके आपने टुकड़े किये हैं, कोई और नहीं हैं जो बुलाने पर आ गए हों। इस आयत की तफ़्सीर करते हुए मौलाना सनाउल्लाह अमरतसरी के लिए

मसअला पैदा हुआ कि इस साइंसी सोच के दौर में यह बात कैसे कहें। लिहाज़ा इन्होनें ताअवील की कि इससे मुराद यह है कि चार पूरे पूरे परिंदे मुख़्तलिफ़ पहाड़ों पर रखो और इन्हें पुकारो तो आ जाएंगे। अब यह मुशाहिदा तो हर तीतर बाज़ को होता है कि वो ख़ुद से मानूस तीतर या बटेर को अपने पास बुलाता है, सीटी बजाता है तो वो आ जाता है। अगर इससे यही मुराद है तो इस क़दर अहतमाम के साथ और अहयाए मोती पर एतमीनाने क़ल्ब हासिल करने की दुआ के जवाब में यह बात क्यों कही गई ? जिसमें इब्तदाअन ज़रा डांट का अंदाज़ा भी आ गया कि क्या तुम ईमान नहीं रखते ? इसके बाद हज़रत इब्राहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ ने बड़ी लजाहत के साथ कहा के परवरदिगार! मैं मानता तो हूं लेकिन ज़रा एतमिनाने क़ल्बी दरकार है। जब मौलाना सनाउल्लाह अमरतसरी से कहा कि आपने इस आयत की यह ताअवील क्यों कर दी, तो इन्होंने ने यह उज़्र पेश किया कि मैं क्या करूं, मुझे दूसरों के सामने बात पैश करना है। तो यह है असल बात के जिस दौर के लोगों से ख़िताब करना हो उनके मुसल्लिमात का कुछ तो लिहाज़ रखना पड़ता है।

तो पहली बात यह जान लीजिए कि अगर आपने किसी के किसी वसफ़ को दाइम और मुस्तक़िल बिज़्ज़ात मान लिया तो आप शिर्क फ़िस्सिफ़ात के मरतकब हो गए। इसलिए के क़ायम दायम, मुस्तक़िल बिज़्ज़ात और मुतल्लक़ औसाफ़ तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हैं, किसी और के अंदर कोई सिफ़्त, ताअसीर या वसफ़ मुस्तक़िल नहीं, मत्लक़ नहीं, हमेशा से नहीं और हमेशा रहने वाला नहीं। हर शै और हर हस्ती के ओसाफ़ ताबअ हैं इज़्ने ख़ुदा वन्दी के। अगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहेगा तो उनका ज़हूर होगा, वर्ना किसी सिफ़्त की कोई ताअसीर ज़ाहिर नहीं हो सकती। मज़्कूरह बाला साइंसी तर्ज़े फ़िक्र की वजह से ज़हनों में जो सोच पुख़्ता और रासख़ हुई है इसे “मादह परसती का शिर्क” कहा जा सकता है। इसलिए हमारा सारा तवक्कल और इन्हसारी मादी असबाब व मसाइल पर है, अगर यह हासिल हैं तो दिलजोई भी हासिल है, यह नहीं हैं तो दिल उड़ा हुआ है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की क़ुदरत पर इतना यक़ीन नहीं है जितना भौतिक वसाइल के नताइज पर यक़ीन है। नतीजतन सारा भरोसा और तवक्कल ज़ाते ख़ुदा वंदी से हट कर मादी (भौतिक) अस्बाब व वसाइल के साथ मुन्सलिक हो गया है। हिक्मते क़ुरआनी की जड़ तौहीद है और تُعْرَفُ الْأَشْيَاءُ بِأَضْدَادِهَا के मस्दाक़ तौहीद को समझने के लिए शिर्क को समझना पड़ेगा। रात को दिन के हवाले से

समझा जा सकता है और दिन की हक़ीक़त रात के हवाले से रौशन होती है। चुनांचे तौहीद को समझने के लिए शिर्क को समझना ज़रूरी है। सूरहे बनी इस्राईल और सूरतुल कहफ़ में तौहीद को मस्बत अंदाज़ में और शिर्क को मंफ़ी अंदाज़ में ख़ूब अयां किया गया है। इन दोनों सूरतों को मैं "हिक्मते क़ुरआनी के अज़ीम तरीन ख़ज़ाने" क़रार देता हूं। सूरहे बनी इस्राईल के बिल्कुल आग़ाज़ में फ़रमाया गया:

وَآتَيْنَا مُوسَى الْكِتَابَ وَجَعَلْنَاهُ هُدًى لِّبَنِي إِسْرَائِيلَ أَلَّا تَتَّخِذُوا مِن دُونِي وَكِيلًا ﴿2﴾

"और हमने मूसा को किताब (तौरात) अता फ़रमायी और इसे बनी इस्राईल के लिए हिदायत नामा बनाया (रहनुमाई क़रार दिया) कि मेरे सिवा किसी और को अपना वकील (कार साज़) न बना लेना।"

وكيل का मादआ(root) و , ك और ل है और मतलब है जिस पर तवक्कल और भरोसा हो, जिससे उम्मीदें वाबस्ता हों, जिसको कारसाज़ समझा गया हो, जिसको किसी भी मसअले में अपनी मुश्किल का हल समझा जा रहा हो। सूरह मोमिन (ग़ाफिर) में मोमिन-ए-आल-ए-फ़िरऔन के अलफ़ाज़ नक़ल हुए हैं ﴿وَأُفَوِّضُ أَمْرِي إِلَى اللَّهِ ۚ إِنَّ اللَّهَ بَصِيرٌ بِالْعِبَادِ ﴿44﴾﴾ "और मैं अपना मामला अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के सुपरुद करता हूं, यक़ीनन अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى अपने बन्दों का निगहबान है"। "तौहीद फ़ित्तवक्कल" यही तो है कि सारा भरोसा, दारोमदार और इन्हिसार अस्बाब व वसाइल के बजाए अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की ज़ात पर हो। अस्बाब व वसाइल की नफ़ी क़तअन नहीं है, लेकिन यह कि कोई भरोसा उन पर क़तअन न हो। सूरतुल अन्फ़ाल में फ़रमाया गया:

(وَأَعِدُّوا لَهُم مَّا اسْتَطَعْتُم مِّن قُوَّةٍ) "और अपनी इम्कानी हद तक इन (कुफ़्फ़ार) के मुक़ाबले के लिए ताक़त तैयार रखो।" (आयत 60) यानी हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने के बजाए जितने भी अस्बाब व वसाइल फ़राहम कर सकते हो कर लो, लेकिन तुम्हारा तवक्कुल इन अस्बाब व वसाइल पर न हो। यह हक़ीक़त ज़हननशीन रहे कि अस्बाब से कुछ नहीं होगा, बल्कि होगा वही जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى चाहेगा। और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى बग़ैर अस्बाब के भी नतीजा पैदा कर सकता है, वो अस्बाब का मुहताज क़तअन नहीं, और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى अस्बाब के होते हुए उलटा नतीजा भी बरआमद कर सकता है, वो अस्बाब का पाबंद नहीं।

इन दोनों में से कोई पहलू भी अगर आपके ज़हन में है तो आप **"शिर्क फ़ित्तवक्कुल"** के अन्दर मुलव्विस हो गए। मैं एक मिसाल दिया करता हूं कि आपने कहीं जाना है और आपके

पास कार या कोई और सवारी दुरुस्त हालत में मौजूद है, आपने इसके लिए पेट्रोल का इनत्ज़ाम भी कर लिया है और आपने यह इरादा कर लिया है कि आप सुबह उठ कर लाज़िमन अपनी मंज़िले मक़सूद की तरफ़ रवाना हो जाएंगे। अगर आपको यक़ीन हो गया है कि अब आपके रवाना होने में कोई रुकावट नहीं है और आप यह भूल गए हैं कि इन अस्बाब के ऊपर एक **मुसब्बुलअस्बाब** हस्ती भी है और सारे वसाइल के जमा होने के बावजूद भी आप उसके इज़्न के बग़ैर हिल नहीं सकते तो आप गोया मादह परसती के शिर्क में मुब्तला हो गए, **शिर्क फ़ित्तवक्कल** में मुलव्विस हो गए। यह अस्ल में महजूबियत है कि आप अस्बाब के परदे में महजूब हो गए, अस्बाब का यक़ीन आपके दिलों में पैदा हो गया। आपके ज़हन में अस्बाब पर तवक्कल पैदा हो गया, आपने अपने दिल के सिघासन पर मादी असबाब को बिठा दिया, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से निगाहें महजूब रह गईं। जैसे इक़बाल ने कहा:

बुतों से तुझको उम्मीदें ख़ुदा से ना उम्मीदी
मुझे बता तो सही और काफ़री क्या है?

हमारा तरज़े अमल हमेशा होना चाहिए कि जब भी किसी काम का इरादा करें तो मक़्दूर भर अस्बाब व वसाइल बरोए कार लाने के बाद ज़बान पर अल्फ़ाज़ हों "इन्शाअल्लाह" और दिल में यह पुख़्ता यक़ीन हो कि तमाम अस्बाब व वसाइल इज़्न-ए-ख़ुदावन्दी के मुहताज हैं और नतीजा वही निकलेगा जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहेगा। अस्बाब व वसाइल पर यक़ीन करते हुए कभी यह नहीं कहना चाहिए के "मैं कल यह काम ज़रूर करूंगा"। अगर कोई आमी इंसान यह कह रहा रहा हो तो इसकी फ़ौरी पकड़ नहीं होगी, इसलिए कि इसकी अपनी ज़हनी सतह है, इसे अभी वो क़ल्बी तरफ़्फ़अ हासिल नहीं हुआ, वो तो अस्बाब व वसाइल ही के चक्कर में है, लेकिन अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इस पर नबी-ए-करीम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की गिरफ़्त फ़रमायी। मुशरिकीन मक्का ने आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से कुछ सवालात किये कि ज़रा बताइए अस्हाबे कहफ़ कौन थे ? रूह की हक़ीक़त क्या है ? ज़ुल्क़ुरनैन कौन था ? तो रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने यह सोच कर हज़रत जिब्राईल عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ आते ही रहते हैं, इनसे पूछ लूंगा, कह दिया कि "मैं कल जवाब दे दूंगा" और "इन्शाअल्लाह" न कहा, तो आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की गिरफ़्त हो गई। इसलिए कि حَسَنَاتُ الْأَبْرَارِ سَيِّئَاتُ الْمُقَرَّبِينَ के बहुत सी चीज़ें जो अबरार के लिए नेकियां हो सकती हैं वही मुक़र्रबीन के लिए क़ाबिले गिरफ़्त हो

सकती हैं, इनके मरतबे से फ़रोतर हो सकती हैं। अब हज़रत जिब्राईल عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ नहीं आ रहे और लोग तालियां पीट रहे हैं कि मुहम्मद صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيۡهِ وَسَلَّمَ! इन सवालों के क्या जवाबात हैं ? नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيۡهِ وَسَلَّمَ ख़ामोश रहे। आप ज़रा सोचिए कि यह नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيۡهِ وَسَلَّمَ के लिए किस क़द्र तशवीश नाक और नाज़ुक सूरते हाल होगी। लेकिन हिक्मते ख़ुदावन्दी यही थी कि आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيۡهِ وَسَلَّمَ की गिरफ़्त हुई। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने सुरह अलकहफ़ में फ़रमाया:

وَلَا تَقُولَنَّ لِشَاْيۡءٍ إِنِّي فَاعِلٌ ذَٰلِكَ غَدًا ﴿٢٣﴾ إِلَّآ أَن يَشَآءَ ٱللَّهُۚ وَٱذۡكُر رَّبَّكَ إِذَا نَسِيتَ وَقُلۡ عَسَىٰٓ أَن يَهۡدِيَنِ رَبِّي لِأَقۡرَبَ مِنۡ هَٰذَا رَشَدًا ﴿٢٤﴾

और किसी काम की निस्बत न कहा करो कि मै इसको कल करूँगा (23) मगर أَن يَشَآءَ ٱللَّهُ कह कर और अगर (أَن يَشَآءَ ٱللَّهُ कहना) भूल जाओ तो (जब याद आए) अपने परवरदिगार को याद कर लो (أَن يَشَآءَ ٱللَّهُ कह लो) और कहो कि उम्मीद है कि मेरा परवरदिगार मुझे ऐसी बात की हिदायत फरमाए जो रहनुमाई में उससे भी ज्यादा क़रीब हो (24)”

इसके बाद सूरतुल कहफ़ में उन सवालात के जवाबात नाज़िल फ़रमाये गए। तो यह है अस्ल में **“तौहीद फ़ित्तवक्कुल”** कि किसी शै से कुछ नहीं हो सकता, जब तक अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ न चाहे। “शिर्क फ़ित्तवक्कल” या मादहपरसती (भौतिकवाद) की सूरतुल कहफ़ के पांचवें रकूअअ में इस शिर्क की मुख़्तलिफ़ पहलूओं से वज़ाहत हुई है। इसमें दो व्यक्तियों का मकालमा बड़ी तफ़्सील से नक़ल हुआ है। यह भी हो सकता है कि यह वाक़्या हो और यह भी हो सकता है के यह तमसीली पेराया हो। इन दो व्यक्तियों में से एक मवाहिद था। इसके पास दुनयवी (सांसारिक) अस्बाब व वसाइल और माल व दौलत नहीं थी, लेकिन अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर इसका कामिल यक़ीन और तवक्कल था। वो मअरफ़ते ख़ुदा वन्दी और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर ईमान से सरशार था, जबकि दूसरा मुशरिक था। उसके पास सांसारिक धन एवं बाग़ थे , लेकिन अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर विश्वास नहीं था। क़ुरआन में यह वाक़्या इन शब्दों में बयान हुआ है:

وَٱضۡرِبۡ لَهُم مَّثَلٗا رَّجُلَيۡنِ جَعَلۡنَا لِأَحَدِهِمَا جَنَّتَيۡنِ مِنۡ أَعۡنَٰبٖ وَحَفَفۡنَٰهُمَا بِنَخۡلٖ وَجَعَلۡنَا بَيۡنَهُمَا زَرۡعٗا ﴿٣٢﴾ كِلۡتَا ٱلۡجَنَّتَيۡنِ ءَاتَتۡ أُكُلَهَا وَلَمۡ تَظۡلِم مِّنۡهُ شَيۡـٔٗاۚ وَفَجَّرۡنَا خِلَٰلَهُمَا نَهَرٗا ﴿٣٣﴾

“और (ऐ नबी صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ!) इनके सामने मिसाल बयान कीजिए दो व्यक्तियों की, इनमें से एक को हमने अंगूर के दो बाग़ दिये और इनके गिर्द खजूर के दरख़्तों की बाड़ लगाई और उनके दर्मियान काश्त की ज़मीन रखी। (यानी फल के साथ साथ अनाज भी पैदा हो रही थी) दोनों बाग़ ख़ूब फले फूले और बार आवर होनें में उन्होंने ज़रा सी कसर भी न छोड़ी और इन बाग़ों के अन्दर हमने एक नहर जारी कर दी (यानी आब पाशी का निज़ाम भी मौजदू था और बाग़ कभी सूखा नहीं था)। मज़ीद यह के इसका समर भी था”। [इससे मज़ीद यह मुराद भी ली गई है कि वो साहिबे औलाद भी था और यह भी के बाग़ फलों से लदा फंदा था]

وَكَانَ لَهُ ثَمَرٌ فَقَالَ لِصَاحِبِهِ وَهُوَ يُحَاوِرُهُ أَنَا أَكْثَرُ مِنكَ مَالًا وَأَعَزُّ نَفَرًا ﴿34﴾

“पस उसने (मुशरिक ने) अपने साथी (मवाहिद) से कहा कि जो उससे हमकलाम था (ख़ैर और भलाई की कोई बात कर रहा था, कुछ ख़ौफ़े ख़ुदा दिला रहा था) कि मैं तुझसे ज़्यादा मालदार हूं और तुझसे ज़्यादा ताक़त रखता हूं”।

यानी इसका दुनयवी माल व मताअ और अस्बाब व वसाइल पर मुकम्मल भरोसा हो गया। आज कल कि ज़माने में यूं समझिए के किसी शख़्स के पास दो बड़ी मिलें (mills) हों और इसने एक बड़ा फ़ारम भी लगाया हुआ हो। आब पाशी के लिए भी इसका अपना निज़ाम (टयूबवेल) हो , और बिजली के लिए सरकारी बिजली पर इन्हिसार करने के बजाए इसने अपना ही बहुत बड़ा जनरेटर लगा लिया हो । लिहाज़ा उस मवाहिद के जवाब में उसने कहा: “मैं तुझसे ज़्यादा मालदार हूं और तुझसे ज़्यादा ताक़त रखता हूं।” तुम ख़ुद तो जूतियां पटख़ारते फिरते हो और हमें आए हो नसीहत करने! हमारे पास यह जो माल व मताअ और साज़ व सामान है आख़िर हमें यूं ही नहीं मिल गया! आख़िर हमारे अन्दर कुछ ज़हानत व फ़तानत है, हमने कुछ सोचा और मेहनत की है, तब ही तो यह चीज़ें हमें हासिल हुई हैं!

आगे फ़रमाया وَدَخَلَ جَنَّتَهُ وَهُوَ ظَالِمٌ لِّنَفْسِهِ “और (यह कहते हुए) वो अपने बाग़ में दाख़िल हुआ जबकि वो अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहा था”। जब इसने बाग़ का लहलहाता हुआ मन्ज़र देखा तो इसका नशा दो आतशा हो गया और इसके दिल में एक ख़नास सा पैदा हो गया।

قَالَ مَا أَظُنُّ أَن تَبِيدَ هَٰذِهِ أَبَدًا ﴿35﴾ وَمَا أَظُنُّ السَّاعَةَ قَائِمَةً “इसने कहा: मैं नहीं समझता कि मेरा यह बाग़ कभी भी तबाह हो सकता है, और मुझे तवक़्क़ो नहीं कि क़यामत की घड़ी कभी आएगी”। तुम ख़्वाम ख़्वाह मुझे ख़ुदा से और बुरे अन्जाम से डराते हो।

देखिए यह था वो जहल मरकब जो उसके अन्दर पैदा हुआ। इसके एतक़ाद व नज़रयात में कहीं भी किसी देवी देवता का ज़िक्र नहीं है। ज़िक्र है तो अस्बाब व वसाइल और सांसारिक साज़ व सामान का है। उसने यह नहीं कहा कि यह फ़लां देवी का मुझ पर करम है और फ़लां देवता की मुझ पर कृपा है। बल्कि इसके अगले अल्फ़ाज़ से वाज़ेह होता है कि वो मानने वाला एक रब ही का है। وَلَئِن رُّدِدتُّ إِلَىٰ رَبِّي لَأَجِدَنَّ خَيْرًا مِّنْهَا مُنقَلَبًا ﴿36﴾

"ताहम अगर कभी मुझे अपने रब के हुज़ूर लौटाया भी गया तो में ज़रूर इससे भी ज़्यादा शानदार जगह पाऊंगा"। जब मेरे अन्दर यह सलाहियतें हैं कि मुझे यहां इतना कुछ मिला है तो वहां इससे बढ़ कर मिलेगा। तुम यहां जूतियां पटख़ार रहे हो तो वहां भी जूतियां पटख़ारोगे। यह है इसका वो ख़न्नास जो ज़ाहिर हुआ। अब उस बन्दा-ए-ख़ुदा का जवाब पढ़िये

قَالَ لَهُ صَاحِبُهُ وَهُوَ يُحَاوِرُهُ أَكَفَرْتَ بِالَّذِي خَلَقَكَ مِن تُرَابٍ ثُمَّ مِن نُّطْفَةٍ ثُمَّ سَوَّاكَ رَجُلًا ﴿37﴾

"उस (मवाहिद) ने उस (सरमायादारे मसत) से कहा जो उससे हम कलाम था कि क्या तूने कुफ़्र किया उस ज़ात का जिसने तुझे मिट्टी से, फिर नुत्फ़े से पैदा किया, फिर तुझे एक मुकम्मल इंसान बना दिया?"

لَّٰكِنَّا هُوَ اللَّهُ رَبِّي وَلَا أُشْرِكُ بِرَبِّي أَحَدًا ﴿38﴾

"लेकिन मेरा रब तो वही अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ है (मैं तो इस एक ही रब का मानने वाला हूं) और मैं अपने रब के साथ किसी को शरीक नहीं करता"।

وَلَوْلَا إِذْ دَخَلْتَ جَنَّتَكَ قُلْتَ مَا شَاءَ اللَّهُ لَا قُوَّةَ إِلَّا بِاللَّهِ

"और (ऐ बदबख़्त!) यह क्यों न हुआ कि तू जब अपने बाग़ में दाख़िल हुआ था तो कहता जो कुछ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहे (वही होगा) कोई ज़ोर नहीं (न मेरा न किसी और का) मगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही की तौफ़ीक़ व ताईद से"।

यह "माशाअल्लाह" क्या है? यह कि इंसान कोई सुहाना मंज़र और नेमत वग़ैरह देखे और समझे कि यह सब कुछ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मश्यत (इच्छा) का ज़हूर है, इसका करम व महरबानी है, इसी की देन है, यह मेरी क़ुव्वतों, मेरी सलाहियतों और मेरी तवानाइयों का ज़हूर नहीं है! यह है अस्ल में तौहीद कि अगर आप कहीं घर में दाख़िल और वहां आप को कोई अच्छा नंज़र नज़र आए, बच्चे खेल रहे हो, घर के अंदर ख़ुशी का माहोल हुआ, एक हंसता हुआ भरा घर हो तो फ़ौरन ज़बान से निकलना चाहिए "माशाअल्लाह"। निगाह कहीं अस्बाब व वसाइल की तरफ़ मुन्तक़िल न हो जाए, बल्कि निगाह को एक ही ज़क़न्द में

पहुंचना चाहिए मुसब्बबुल अस्बाब तक कि वो है जिसके फ़ज़्ल का यह ज़हूर है, यह किसी और की कोई महारत, कारीगरी, होशियारी और किसी और की ज़हानत व फ़ज़ानत नहीं है। इस मवाहिद ने फिर कहा

إِن تَرَنِ أَنَا أَقَلَّ مِنكَ مَالًا وَوَلَدًا ﴿39﴾ فَعَسَىٰ رَبِّي أَن يُؤْتِيَنِ خَيْرًا مِّن جَنَّتِكَ وَيُرْسِلَ عَلَيْهَا حُسْبَانًا مِّنَ السَّمَاءِ فَتُصْبِحَ صَعِيدًا زَلَقًا ﴿40﴾ أَوْ يُصْبِحَ مَاؤُهَا غَوْرًا فَلَن تَسْتَطِيعَ لَهُ طَلَبًا ﴿41﴾

"अगर तू मुझे माल और औलाद में अपने से कमतर पा रहा है, तो मुझे यक़ीन है कि मेरा रब (अगर चाहे तो) मुझे तेरे बाग़ से बेहतर बाग़ अता कर दे और (तेरे) इस (बाग़) पर आसमान से कोई आफ़त भेज दे कि वो मैदान बन कर रह जाए (जहां ख़ाक उड़ रही हो)। या इसका पानी ज़मीन के अन्दर उतर जाए और तू (किसी तरह से भी) पानी को खींच कर न ला सके"।

यह मवाहिद की बात थी जो उसकी ज़बान से निकली। नबी-ए-अकरम ﷺ ने फ़रमाया: "अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के कुछ बन्दे ऐसे भी होते हैं जो अगरचे परागन्दह बालों वाले होते हैं, दरवाज़ों से इनको धतकार दिया जाता है, लेकिन अगर वो किसी बात पर क़सम खा बैठें तो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ इनकी क़सम की लाज रखता है"। और यहां भी ऐसा ही हुआ।

وَأُحِيطَ بِثَمَرِهِ فَأَصْبَحَ يُقَلِّبُ كَفَّيْهِ عَلَىٰ مَا أَنفَقَ فِيهَا وَهِيَ خَاوِيَةٌ عَلَىٰ عُرُوشِهَا

"और खेंच लिया गया (ख़त्म कर दिया गया) इसका सारा समर"। हो सकता है कोई ऐसी वबा आई हो कि सारी औलाद भी हलाक हो गई हो और कोई एक ऐसा बगोला आया हो जो उसके पूरे के पूरे बाग़ को झुलसा कर चला गया हो। "अब वो बाग़ पर अपनी लगाई हुई लागत पर अपनी हथेलियां मलता रह गया, जबकि वो बाग़ अपनी टटियों पर उलटा पड़ा हुआ था।" यानी इस बात पर अफ़सोस के मेरी सारी उम्र की मेहनत और कमाई इस पर लगी हुई थी और चशम ज़दन में ख़त्म हो गई।

وَيَقُولُ يَا لَيْتَنِي لَمْ أُشْرِكْ بِرَبِّي أَحَدًا ﴿42﴾

"और वो कहने लगा काश के मैंने अपने रब के साथ किसी को शरीक न ठहराया होता!"

अब यहां देखिए कि यह कौन सा शिर्क मुराद है? इस पूरे वाक़्ये में किसी देवी या देवता का और किसी लात व मनात और उज्जा का कोई ज़िक्र नहीं। ज़िक्र तो रब का है कि और कभी मैं अपने रब की तरफ़ लौटा दिया गया......." यह अस्ल में माद्दे और अस्बाब व वसाइल पर तवक्कल है, अपनी तवानाइयों, ज़हानत दूर अन्देशी और मामला फ़हमी का

घमन्ड है जिसे मज़कूरह बाला रकूअ में शिर्क से तअबीर किया गया है। यह माद्दहपरस्ती का शिर्क है जो पहले शायद शाज़ होता हो, लेकिन आज काइनाती (Universal) है। साइंस इसी बुनियाद पर परवान चढ़ी और उभरी है। यह इस कायनात के तमाम मज़ाहिर फ़ितरत (phenomena) को ऐसे बयान करती है कि यह ख़ुद कारे निज़ाम है और इसमें तबीई क़वानीन अमलपेरा हैं। मसलन भाप उठी, हवा उसे इधर से उधर ले गई, बादल बने और बारिश बरसी। इसमें कहीं ख़ुदा की मश्यत, ख़ुदा के इरादा, ख़ुदा के इज़न का कोई ज़िक्र नहीं है। इसका मज्मूई असर यह हुआ कि अगर ख़ुदा का इक़रार है भी तो महज़ इस हद तक कि वो मुआज़ुल्लाह किसी कोने में बैठ गया है और यह कायनात ख़ुद बख़ुद चल रही है। हमारे सारा तवक्कुल और ऐतमादी अस्बाब व वसाइल पर है। और इस शिर्क फ़ितवक्कुल या माद्दह परस्ती के शिर्क में कम व बेश हम में से हर शख़्स मुब्तला है।

इसको एक हदीस के हवाले से समझिए। नबी-ए-अकरम ﷺ ने एक मर्तबा ज़ुहद की तारीफ़ इस तरह बयान फ़रमायी कि "दुनिया में ज़ुहद (अपने ऊपर) हलाल को हराम कर लेने और माल व दौलत को ज़ाऐ करने का काम नहीं है, बल्कि दुनिया में ज़ुहद तो यह है के जो कुछ तुम्हारे हाथों में है इस पर तुम्हारा तवक्कुल और ऐतमाद ज़्यादा ने हो जाए इस चीज़ से जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हाथ में है"।

यानी तुम तमाम तौर पर समझते हो कि हलाल चीज़ों को भी अपने उपर हराम ठहरा लिया जाए तो ज़ुहद है, यानी ना अच्छा खाना, न अच्छा पहनना, हालांकि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने यह चीज़ें हलाल की हैं। इर्शादे इलाही है:

مَنْ حَرَّمَ زِينَةَ اللَّهِ الَّتِي أَخْرَجَ لِعِبَادِهِ وَالطَّيِّبَاتِ مِنَ الرِّزْقِ

"(ऐ नबी ﷺ) कह दीजिए किसने अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की उस ज़ीनत को हराम कर दिया जिसे अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने अपने बन्दों के लिए निकाला था और ख़ुदा की बख़्शि हुई पाक चीज़ें (मम्नूअ कर दीं)?! (अल अअराफ़:32)

बल्कि ज़ुहद तो यह है के जो कुछ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हाथ में है उस पर तुम्हारा वसूक़, ऐतमाद और तवक्कल ज़्यादा हो जाए इससे के जो तुम्हारे हाथ में है, यानी अस्बाब व वसाइल और दौलत वग़ैरह। लेकिन हमारा हाल यह है कि जेब में पैसा है तो दिल को सुकून है, जेब में पैसा नहीं तो दिल उड़ा हुआ है, इसलिए कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के ख़ज़ानों पर,

अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की रज़्ज़ाक़ियत और क़ुदरत पर हमारा इतना ऐतमाद और यक़ीन नहीं जितना के धन पर है, बल्कि इसका अशर अशीर भी नहीं। अब इसे शिर्क कह लें या कुफ़्र कह लें। जैसे "जो दम ग़ाफ़िल सो दम काफ़िर" कि इंसान का जो सांस ग़फ़लत में बसर होता है तो दर हक़ीक़त इसका वो वक़्त एक प्रकार के कुफ़्र में गुज़रता है।

देखिए नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने तौहीद की कितनी तल्क़ीन की है । आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने अपने चचा ज़ाद भाई हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ को ताकीद फ़रमायी कि इस बात को ज़हन नशीन कर लो के "अगर तमाम इंसान मिल कर तुझे कोई नफ़अ पहुंचाना चाहें तो नहीं पहुंचा सकते मगर वही कुछ जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने तुम्हारे हक़ में लिख दिया है, और तमाम इंसान मिल कर अगर तुझे कोई नुक़सान पहुंचाना चाहें तो नहीं पहुंचा सकते मगर वही कुछ जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने तुम्हारे ख़िलाफ़ लिख दिया"। जब तक इंसान के अन्दर यह कैफ़ियत पैदा नहीं होती कि तमाम بیم ورجاء का मर्कज़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की ज़ात हो जाए । अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से उम्मीद और ख़ौफ़ दोनों मन्तक़ाअ हो जाएं तो गोया अस्ल तौहीद हासिल नहीं। तौहीद का नाम ही तो विलायते ख़ुदावन्दी है।

अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का इर्शाद है: (أَلَآ إِنَّ أَوْلِيَآءَ ٱللَّهِ لَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ)"सुनो! जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के दोस्त हैं इनके लिए यक़ीनन किसी ख़ौफ़ और ग़म का मौक़ा नहीं है"।(यूनुस : 62)

इनकी उम्मीदें और इनका ख़ौफ़ सब मासिवा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से कट कर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की ज़ात पर मुर्तकज़ हो जाता है। उम्मीद है तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से और ख़ौफ़ है तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से। उनका ईमान और यक़ीन होता है कि किसी और के लिए कुछ नहीं हो सकता जब तक अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ न चाहे। कोई मेरी बिगड़ी नहीं बना सकता जब तक के अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ न चाहे, कोई मेरी तक्लीफ़ रफ़अ नहीं कर सकता अगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ न चाहे। तो ख़ौफ़ और उम्मीद दोनों जब तक जुम्ला मख़्लूक़ात से मुन्तक़ाअ होकर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की ज़ात से मुन्सलिक न हो जाएं इंसान तौहीद का लज़्ज़त आशना नहीं हो सकता। आज का इंसान इस मादह परसताना फ़िक्र की वजह से इससे बहुत महरूम हो चुका है। अल्बत्ता ज़बान से लाइलाहा कह देना आसान है, इसमें कोई मुश्किल नहीं पड़ती।

बाज़ मज़्हबी नज़ाआत और इनका हल

अब आइए ज़रा "शिर्क फ़िस्सिफ़ात" के कुछ दूसरे पहलूओं की तरफ़ जिनसे बाज़ मज़्हबी नज़ाआत रो नुमा हुए हैं। शायद आपको इनका कोई हल मयस्सर आ जाए। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى कि सिफ़ात के बाब में एक बात तो यह जान लीजिए कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के लिए क़ुरआन मजीद में बहुत से अल्फ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं बतौर सिफ़त भी और बतौर अस्माअ भी। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के अस्मा व सिफ़ात में बहुत थोड़ा फ़र्क़ है। जब उस लफ़्ज़ को हालते नकरह में लाते हैं तो वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की सिफ़्त है और जब इसे माअर्रफ़ बिल्लाम करते हैं तो वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى का नाम है। मसलन "समीउन" अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की सिफ़्त है कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى सुनने वाला है, जबकि "अस्समीअ" अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى का नाम है। हमें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की माअर्फ़त इसके अस्मा व सिफ़ात ही के हवाले से हासिल है। जैसे हम कहते हैं 'آمَنْتُ بِاللّٰهِ كَمَا هُوَ بِاَسْمَائِهٖ وَصِفَاتِهٖ' कि मैं अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى पर ईमान लाया जैसा कि वो अपने अस्मा और सिफ़ात से ज़ाहिर है। तो हमारा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के साथ जो ज़हनी और क़ल्बी रिश्ता है वो इसके अस्मा व सिफ़ात के हवाले से है।

क़ुरआन मजीद यह भी कहता है: (لِلّٰهِ الْأَسْمَاءُ الْحُسْنَىٰ) "जितने अच्छे नाम हैं उसी के हैं"। फिर यह भी के अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के लिए क़ुरआन मजीद में जो नाम आ गए हैं वो तो यक़ीनन अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के हैं और जिन सिफ़ात का इस्बात हो गया है वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के लिए साबित हैं, लेकिन चंद सिफ़ात को बुनियादी क़रार दिया गया है कि बक़्या सिफ़ात इन्ही की फ़रोअ और शाख़ें (corollaries) हैं। मस्लन सिफ़्ते इल्म अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की एक बुनियादी सिफ़्त है और समीअ, बसीर, लतीफ़, ख़बीर, यह तमाम अस्ल में इल्म ही के मुख़्तलिफ़ शोअबे और शाख़ें हैं। इसी तरह अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى की एक सिफ़्त "क़ुदरत" है। अब इसके ज़ेल में अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَى के बहुत से नाम आ जाएंगे, मस्लन" अल्मुइज़्ज़ु "इज़्ज़त देने वाला" अलमुज़िल्लु "ज़लील करने वाला" अर्राफ़िउ "उठाने वाला" अलख़ाफ़िज़ु "गिराने वाला" अलबासितु "कुशादगी देने वाला" अल-क़ाबिज़ु "तन्गी देने वाला" यह सब इसकी सिफ़्ते क़ुदरत ही की फ़रोअ और इसकी शाख़ें हैं।

अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالٰی की बुनियादी सिफ़ात यह हैं (अगरचे मुख़्तलिफ़ उलमाअ, मुहक़्क़क़ीन और मुतकल्लमीन के हां यह मुख़्तलिफ़ हैं): (1) वजूद (2) हयात, (3) क़ुदरत, (4) इल्म, (5) इरादा, (6) कलाम। वो अल हय्यु है, ज़िंदा है, इसका वजूद हयात वाला है। वो साहिबे क़ुदरत है, साहिबे इल्म है, साहिबे इरादा है, मुतकल्लिम है । इन तमाम सिफ़ात के साथ जब आप तीन चीज़ें जोड़ लेंगे कि इसकी यह सिफ़्त मुतलक है, ज़ाती है और क़दीम है तो यह तौहीद है। और अगर मुतलक होनें में, क़दीम होने में और ज़ाती होने में किसी और को पहलू से शामिल कर लिया गया तो यह शिर्क है। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالٰی की हयाते मुतलक है, ज़ाती है और क़दीम है, ज़बकि मासिवा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالٰی की हयात ज़ाती नहीं अताई (अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالٰی की अता कर्दा) है, मुतलक नहीं मुक़ीद और महदूद है, क़दीम नहीं हादिस है। अगर यह चीज़ें पेशे नज़र रहें तो तौहीद में कोई ख़लल नहीं आएगा। लेकिन अगर इनमें से किसी एक चीज़ को किसी एक पहलू से मजरूह कर दिया गया तो यह शिर्क बन जाएगा।

इसी तरह इल्म के बारे में तौहीद यह है कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالٰی का इल्म ज़ाती है जबकि मासिवा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالٰی का इल्म अताई है। मासिवा में सब शामिल हैं। जब फ़रिश्तों से कहा गया कि बताओ ज़रा इन चीज़ों के नाम तो उनका जवाब था: (سُبْحَانَكَ لَا عِلْمَ لَنَا إِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا) "तू पाक है (ऐ परवरदिगार!) हमें कोई इल्म हासिल नहीं सिवाए इसके जो तूने हमें सिखाया (अता किया) है"।(अलबक़रह:32) तो मालूम हुआ कि फ़रिश्ते हों, अम्बिया हों, रसूल हों, कोई बड़े से बड़ा अल्लामा हो, कसे बाशिद, सबका इल्म अताई है ज़ाती नहीं, हादिस है क़दीम नहीं, महदूद है मुतलक और लामत्नाही नहीं। यह तीनों क़यूद अगर मौजदू हैं तो शिर्क नहीं है, और अगर इनमें से एक क़ैद भी हट गई तो शिर्क हो जाएगा।

मस्अलाए इल्म ग़ैब

अब ज़रा "इल्म ग़ैब के मस्अले को हल कर लीजिए! यह हमारे हां के مہتم بالشان मसाइल में से एक है और इसमें बहुत तवील बहसें और झगड़े हैं कि रसूलुल्लाह صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّم को इल्मे ग़ैब हासिल है या नहीं? एक तरफ़ से इसकी पुरज़ोर नफ़ी है और एक तरफ़ से इस्बात है कि नबी-ए-अकरम صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّم "عَالِمُ الْكُلِّ" اور "عَالِمُ مَا كَانَ وَمَا يَكُوْنُ" हैं। और इन दोनों

मकातबे फ़िक्र में जो रस्सा कशी है वो दरअस्ल "इल्म ग़ैब" की परिभाषा (definition) का मतभेद है। मुझमें الحمدلله मामले की तहक़ीक़ का दाइया है कि किसी भी मामले की अच्छी तरह से तहक़ीक़ कर ली जाए, और यह अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के मुझ पर अहसानात में से एक अहसान है। मैं अभी मेडिकल कालिज में ज़ेरे तालीम था कि साहेवाल में एक बरेलवी मकतब फ़िक्र के आलिमे दीन के पास गया और पूछा कि इल्म ग़ैब के बारे में क्या इख़्तलाफ़ पाया जाता है और इसमें आपका मोक़्क़िफ़ क्या है? इन्होनें कहा कि नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के इल्म के बारे में यह तीनों क़ैदें मानते हैं कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इल्म ज़ाती नहीं अताई है, आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इल्म क़दीम नहीं हादिस है, आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इल्म ग़ैर महदूद नहीं महदूद है। बल्कि इन्होंने मुझे इस पर अपने मक्तब फ़िक्र के उलमा की तहरीरें दिखाईं कि हमारी तरफ़ से इन तीनों बातों का बरमला एतराफ़ और इक़रार होता है। इस पर मैंने अर्ज़ किया कि कम अज़ कम इन तीनों चीज़ों को अगर तसलीम किया जाए तो फिर मेरा आपसे कोई झगड़ा नहीं है और मेरे नज़दीक इसमें शिर्क वाला बात नहीं है। तो दरअस्ल इख़्तलाफ़ की वजह सिर्फ़ यह है कि इल्म ग़ैब की definition मुख़्तलिफ़ हो रही है। जो इस ग़ैब की नफ़ी करते हैं वो इसे किसी और तरह और तरीक़े से परिभाषित करते हैं और जो ग़ैब का इस्बात करते हैं वो इसे किसी तरह से define करते हैं। जो इसका इस्बात कर रहे हैं वो भी दुरुस्त हैं और जो नफ़ी कर रहे हैं वो भी दुरुस्त हैं, लेकिन एक झगड़ा है कि हल नहीं हो रहा है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए जो "ग़ैब" का लफ़्ज़ कई बार आया है कि عَالِمُ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ "वो ग़ैब और हाज़िर का जानने वाला है" तो यह हमारे ऐतबार से है। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए तो कोई चीज़ ग़ैब है ही नहीं। हर शै ऐने वाहिद में इसके सामने हाज़िर है। इसके लिए ग़ैब का क्या सवाल है! अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए अगर ग़ैब का तसव्वुर भी आप करेंगे तो कुफ्र हो जाएगा। जो चीज़ें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इंसानों की निगाह से ओझल रखी हैं वो ग़ैब हैं। इसलिए कि हमें इस दुनिया में इमतेहान के लिए भेजा गया है। अगर सारे हक़ाइक़ हमारी निगाहों के सामने हों तो फिर इमतिहान कैसा ! अगर जन्नत निगाहों के सामने हो, दोज़ख़ भड़कती नज़र आ रही हो और फ़रिश्ते निगाहों के सामने मौज़ूद हों तो कौन फ़िरओन, कौन नमरूद, कौन अबू जहल होगा जो इन्कार करेगा! वो तो सब के सब ईमान ले आएंगे और पूरे पूरे मोमिन होंगे। इसलिए कि ग़ैब तो फिर

शहादह बन कर सामने आ जाएगा। जबकि इमतेहान तो इसी में है कि मानो हमें ग़ैब में रहते हुए, मानो फ़रिश्तों को इसके बावजूद के वो तुमहारी निगाहों से ओझल हैं, मानो जन्नत और दोज़ख़ को इसके बावजूद के वो तुम्हारे लिए ग़ैब हैं। तो इस लफ़्ज़ "ग़ैब" को अगर समझ लिया जाए तो झगड़ा बाक़ी नहीं रहता। दरअस्ल इंसानों के इल्म के आगे एक परदह हाइल कर दिया गया है और इल्म को शहादह और ग़ैब में तक़सीम कर दिया गया है। अब अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ जिसको नबुवत अता करता है इसे इस ग़ैब वाले इल्म में से कुछ हिस्सा देता है, तभी तो वो नबी बनता है ! अगर इसका इल्म भी हमारे इल्म की तरह हो तो वो नबी कैसे हो गया ! इसे तो जन्नत की सैर कराई जाती है जो मेरे और आपके लिए ग़ैबे मुतलक है। इसे दोज़ख़ का मुशाहिदह कराया जाता है जो हमारे लिए ग़ैब है। फ़रिश्ते इसके सामने होते हैं। हज़रत जिब्राईल عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ को इनकी असली शकल में नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने दो मर्तबा देखा है। अज़रोए अल्फ़ाज़े क़ुरआनी :

وَلَقَدْ رَآهُ نَزْلَةً أُخْرَىٰ ﴿13﴾ عِندَ سِدْرَةِ الْمُنتَهَىٰ ﴿14﴾ عِندَهَا جَنَّةُ الْمَأْوَىٰ ﴿15﴾ إِذْ يَغْشَى السِّدْرَةَ مَا يَغْشَىٰ ﴿16﴾ مَا زَاغَ الْبَصَرُ وَمَا طَغَىٰ ﴿17﴾ لَقَدْ رَأَىٰ مِنْ آيَاتِ رَبِّهِ الْكُبْرَىٰ ﴿18﴾

"और एक मर्तबा फिर उसने सिदरतिलमुन्तहा के पास उसको (जिब्राईल को) उतरते देखा, जहां पास ही जन्नतुल माअवा है। उस वक़्त सिदरह पर छा रहा था जो कुछ के छा रहा था। निगाह ना चुन्धयाई न हद से मुताजाविज़ हुई। और इसने अपने रब की बड़ी बड़ी निशानियां देखीं"।

यह मुशाहिदात आलिमे ग़ैब के हैं ना के आलिमे शहादह के। यह जन्नत और दोज़ख़ के मुशाहिदात हैं, यह आलम मलकोत के परदे उठाए जा रहे हैं। हज़रत इब्राहीम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के बारे में इर्शादे इलाही है

وَكَذَٰلِكَ نُرِي إِبْرَاهِيمَ مَلَكُوتَ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ وَلِيَكُونَ مِنَ الْمُوقِنِينَ ﴿6:75﴾

और इस प्रकार हम इबराहीम को आकाशों और धरती का राज्य दिखाने लगे (ताकि उसके ज्ञान का विस्तार हो) और इसलिए कि उसे विश्वास हो (6:75)

तो मालूम हुआ कि आम इंसानों के लिए जो चीज़ें ग़ैब के दर्जे में होती हैं नबी को उनमें से कुछ दिया जाता है तब ही वो नबी बनता है, वरना नबुवत का सवाल ही नहीं। इसको क़ुरआन मजीद ने वाज़ेह कर दिया है। सूरतुल जिन में फ़रमाया गया :

عَالِمُ الْغَيْبِ فَلَا يُظْهِرُ عَلَىٰ غَيْبِهِ أَحَدًا ﴿26﴾ إِلَّا مَنِ ارْتَضَىٰ مِن رَّسُولٍ فَإِنَّهُ يَسْلُكُ مِن بَيْنِ يَدَيْهِ وَمِنْ خَلْفِهِ رَصَدًا ﴿27﴾

"परोक्ष का जाननेवाला वही(अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ) है और वह अपने परोक्ष को किसी पर प्रकट नहीं करता, (26) सिवाय उस व्यक्ति के जिसे उसने रसूल की हैसियत से पसन्द कर लिया हो तो उसके आगे से और उसके पीछे से निगरानी की पूर्ण व्यवस्था कर देता है, (27)

अलबत्ता मासिवा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए कुल ग़ैब के अहाते का अगर तसव्वुर भी हो गया तब तो कुफ़्र भी हो गया और शिर्क भी। कुल ग़ैब तो दूर की बात है, अगर कुल हाज़िर का तसव्वुर भी ज़हन में आ गया तो यह भी कुफ़्र और शिर्क है।

जिस तरह "शिर्क फ़िज़्ज़ात" के ज़िमन में क़ुरआन मजीद का अहम तरीन मक़ाम सूरतुल इख़्लास है, इसी तरह "शिर्क फ़िस्सिफ़ात" या बिल फ़ाज़े दीगर "तौहीद फ़िस्सिफ़ात" के ज़ेल में क़ुरआन मजीद का अज़ीम तरीन मक़ाम आयतल्कुर्सी है। इसमें फ़रमाया गया :

(وَلَا يُحِيطُونَ بِشَيْءٍ مِّنْ عِلْمِهِ إِلَّا بِمَا شَاءَ) "और वो अहाता नहीं कर सकते अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इल्म में किसी भी शैए का, सिवाए इसके जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहे"। इल्मे हाज़िर भी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही का अता कर्दा है, हमारा ज़ाती नहीं है। आंख देख रही है तो इसे अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ दिखा रहा है तो देख रही है वरना आंख के बस का रोग नहीं है कि देख सके। कान भी सुन रहें हैं तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सुन्वाने से सुन रहे हैं, बर्ना कानों का ज़ाती वसफ़ नहीं है के वो सुन सकें। मख़्लूक़ के ज़ाती वसफ़ और सिफ़्त का तो हमने इन्कार कर दिया। इसका तो सवाल ही नहीं। ज़ाती वसफ़ और ज़ाती सिफ़्त तो है ही सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए। लिहाज़ा इल्मे हाज़िर के जो ज़राए हैं वो भी जान लीजिए कि हमारे ज़ाती नहीं, अताई हैं और इनका भी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने दाएरा मुक़र्रर कर दिया है। आंख की जो हद है इतना ही देखगी इससे आगे नहीं। अलबत्ता दूरबीन लगा कर कुछ मज़ीद देख लेगी, लेकिन फिर दूरबीन की भी एक हद है जिससे तजाविज़ मुमकिन नहीं है। लिहाज़ा इल्मे हाज़िर हो या इल्मे ग़ैब, अगर मासिवा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए कुल का अहाता करेंगे तो शिर्क हो जाएगा, वर्ना नहीं।

अब रहा यह मस्अला के हम अम्बिया के इल्म को नापें और तोलें तो इससे बड़ा पागल पन और इससे बड़ी हिमाक़त कोई नहीं। इसलिए के वो तो नोइयत के एतबार से भी हमारे इल्म से मुख़्तलिफ़ है। इसे हम कैसे नापेंगे! हमारा इल्म तो इल्म बिल हवास और इल्म बिल

अक़्ल है, जबकि इनका इल्म, इल्म बिल वही है। लिहाज़ा हुसूले इल्म के ज़राए और माज़िज़ ही मुख़तलिफ़ हों और हम अपने इल्म से उस इल्म को नापनें लग जाएं तो इससे बड़ी हिमाक़त और इससे बड़ा ज़ुल्म कोई नहीं है। ज़ुल्म की ताअरीफ़ है: وَضْعُ الشَّيْءِ فِي غَيْرِ مَحَلِّهِ के किसी शैए को उसके अस्ल मक़ाम से हटा कर कहीं और रख देना। इसे मन्तक़ में قياس مع الفارق कहते हैं कि जो चीज़ें बुनियादी तौर पर और तक़सीम के ऐतबार से ही मुख़्तलिफ़ हों आप इनको एक दूसरे पर क़यास करें और इनको एक दूसरे के पैमानों से नाप रहे हों। और यही है असल मुग़ालता। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने जितना इल्म चाहा मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को दे दिया। हम कौन हैं कि नापें रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के इल्म को! जो यह कहेगा कि हज़रत मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इल्म लामत्नाही है, और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही के इल्म की तरह कामिल और कुल है वो मुशरिक है। लेकिन जो इसको अपने तैइं नाप तौल कर बताएगा कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इल्म इतना तो वो ख़ुदाई का दावा कर रहा है। अगर कोई मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के इल्म का हुदूद व राबिआ ख़ुद मुअय्यन करने बैठ गया तो यह भी कम दर्जे की गुमराही नहीं है। हम तो यह जानते हैं कि आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के पास जो इल्म भी था अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का अताकर्दा था। इनहें जितना दिखाया अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने दिखाया, जो बताया अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने बताया। आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने कोई ग़ैब की ख़बर दी तो अपनी ज़ात से नहीं दी बल्कि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की बताई हुई दी। जो लोग अम्बिया के लिए इल्मे ग़ैब की नफ़ी करते हैं वो ग़ैब की ताअरीफ़ करते हैं कि वो इल्म जो ख़ुद हासिल हो वो ग़ैब है। जबकि ख़ुद तो यहां पर छिटानक भर इल्म भी हासिल होने का इम्कान नहीं है। इल्म तो चाहे हाज़िर का हो चाहे ग़ैब का हो वो सब अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही का दिया हुआ है। तो अस्ल में यह इल्म ग़ैब की परिभाषा ही का सारा फ़साद है कि तुमने ग़लत परिभाषा की है जिसकी बिना पर ग़ैब की नफ़ी कर रहे हो। तुम्हारा मोक़्क़िफ़ ना तो किसी हदीसे नबवी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से मन्क़ूल है और ना ही क़ुरआन मजीद की किसी आयत से माख़ूज़ है। क़ुरआन में सुरह जिन्न के अल्फ़ाज़ तो यह हैं:

عَالِمُ الْغَيْبِ فَلَا يُظْهِرُ عَلَىٰ غَيْبِهِ أَحَدًا ﴿26﴾ إِلَّا مَنِ ارْتَضَىٰ مِن رَّسُولٍ فَإِنَّهُ يَسْلُكُ مِن بَيْنِ يَدَيْهِ وَمِنْ خَلْفِهِ رَصَدًا ﴿27﴾

"वो आलिम उल गैब है, पस वो अपने ग़ैब पर किसी को मत्लाअ नहीं करता। मगर जिसको पसंद करले अपने रसूलों में से......."

चुनांचे यह ग़ैब के परदे अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ उठाता है सिर्फ़ अम्बिया व रुसुल के लिए। अल्बत्ता कितने उठाता है, कितना इसकी मश्यत है, किसको कितना दिखाता है, यह वो जाने और इसका रसूल जाने जिसने देखा।

क़ुरआन मजीद में सूरतुन नज्म में शब मअराज का ज़िक्र हुआ है कि वहां क्या देखा मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने, तो इसमें एक बहुत बड़ा नुक्ता पोशीदा है जिसकी तरफ़ इशारह कर रहा हूं। अब में और आप क्या समझेंगे कि वहां मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने क्या देखा! अगर यह बयान भी कर दिया जाए तो हमारे हाशियाए ख़्याल में भी नहीं आ सकता कि वहां मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने क्या देखा। लिहाज़ा क़ुरआन मजीद ने सिर्फ़ यह कहा:

لَقَدْ رَأَىٰ مِنْ آيَاتِ رَبِّهِ الْكُبْرَىٰ ﴿18﴾ "इन्होंने देखा अपने रब की अज़ीम आयात को"। सिद्रतुल मुन्तहा पर क्या था, अगर क़ुरआन इसे बयान भी करते तो हमारी समझ में आएगा! लिहाज़ा सिर्फ़ फ़रमाया गया: إِذْ يَغْشَى السِّدْرَةَ مَا يَغْشَىٰ ﴿16﴾

"जबकि ढान्पे हुए था उस बैरी के दरख़्त (सिद्रह) को जो ढांपे हुए था"। तुम क्या समझोगे, लिहाज़ा तुम्हे क्या बताएं कि क्या ढान्पे हुए था! बस तुम इसी पर क़नाअत करो कि "देखा (हमारे बन्दे मुहम्मद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने) अपने रब की बड़ी अज़ीम आयात को"। इससे आगे तुम्हारे हाशियाए ख़्याल में आने वाली बात नहीं। यह है मामला हमारे इल्म और हमारी हुदूद का और हम इसको लेकर नापने चलें अम्बियाए कराम عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के इल्म को, और इससे भी आगे बढ़ कर सय्यदुल अम्बिया, सय्यदुल मुर्सलीन हज़रत मुहम्हद صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के इल्म को, तो यह हमारे बुनियादी ग़लती और बुनियादी क़ुसूर है। हां अगर कोई यह समझता है कि नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ आलिमुल कुल हैं, عالمٌ ما كان وما يكون हैं तो यह अक़ीदे की ख़राबी और शिर्क है ।

ताहम "مَا كَانَ وَمَا يَكُوْنُ" को भी समझ लीजिए कि कहने वाला अगर इस नियत से कह रहा है कि नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का इल्म माज़ी पर मुश्तमिल है और मुस्तक़्बिल पर भी तो वो ग़लत तो नहीं ! इसलिए के माज़ी की भी बहुत सी ख़बरें नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को दी गईं और मुस्तक़्बिल की भी बहुत सी ख़बरें आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को दी गईं। जब तक

कहना वाला इस अहाते के साथ न कहे के कुल माज़ी और कुल मुस्तक़्बिल का इल्म आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के पास है, तब तक इसमें कोई हर्ज और कोई मुज़ाएक़ा नहीं है। यह सिर्फ़ दो केटागिरीज़ के एतबार से है। नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ क़ुरआन मजीद के बारे में यह बयान करते हैं कि (فِيهِ نَبَأُ مَا كَانَ قَبْلَكُمْ وَخَبَرُ مَا بَعْدَكُمْ)"इसमें जो कुछ तुमसे पहले हुआ है इसकी ख़बरें भी हैं और जो कुछ तुम्हारे बाद होने वाला है इसकी ख़बरें भी हैं"। तो क़ुरआन में अगर माज़ी की ख़बरें भी हैं और मुस्तक़्बिल के हालात भी इशारे मौजूद हैं तो आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ क्या क़ुरआन का इल्म भी नहीं रखते कि आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ को मालूम ना हो कि माज़ी में क्या हुआ और मुस्तक़्बिल में क्या होगा? सारे फ़साद की जड़ है तो वो एक लफ़्ज़ "कुल" है। "कुल" अगर मासिवा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए आ गया तो यह कुफ़्र भी है और शिर्क भी। "كُل" की शान तो सिर्फ़ अल्लाह वहदहू ला शरीक की है। वो بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ है। عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ है "कुल" का लफ़्ज़ अगर आप किसी और के लिए ले आए तो वो गोया मुतलक (absolute) हो गया जो के कुफ़्र व शिर्क है, हालांकि absolute ज़ात सिर्फ़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की है। और अगर ऐसा नहीं है तो फिर यह सिर्फ़ एक लफ़्ज़ी नज़ाअ और इस्तलाह का झगड़ा है, ताअरीफ़ (definition) का टकराव है, वर्ना इसमें कोई बुनियादी इख़्तलाफ़ी मस्अला मौजूद नहीं है।

ख़ालिक़ और मख़्लूक़ के इरादा व इख़्तियार में फ़र्क़ व तफ़ावत

और आगे चलिए! इरादा हम भी करते हैं और इरादा अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का भी है। लेकिन वो فَعَّالٌ لِّمَا يُرِيدُ है कि जो इरादा करे उसे कर गुज़र करने वाला है, जबकि किसी और की यह शान नहीं। सबके इरादे अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इरादे के ताबेअ हैं। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का इरादा मुतलक है, किसी के ताबअ नहीं, इसे कहीं से sanction और मंज़ूरी नहीं लेनी। ऐसी बात नहीं कि सदरे अमरिका कोई बिल पास कराना चाहता हो लेकिन पारलीमेंट मन्ज़ूरी ना दे और इसकी जान मख़मसे में फंस जाए। जैसे वक़्त का फ़िरओन जो ख़ुदाई का मदई था, इसने हज़रत मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ को क़त्ल करने की क़रारदाद (resolution) अपने दरबार में पेश की, लेकिन दरबारी नहीं माने तो फ़िरओन के हाथ बंध गए। यह मुतलक शान अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की है के वो जो इरादा करले कर गुज़रने वाला है। मश्यते मुतलक सिर्फ़

अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की है। क़ुरआन मजीद में जगह जगह फ़रमाया गया है: (يَفْعَلُ مَا يَشَاءُ) "वो जो चाहता है करता है"। يَخْلُقُ مَا يَشَاءُ "वो जो चाहता है तख़्लीक़ करता है"।
تُعِزُّ مَنْ تَشَاءُ وَتُذِلُّ مَنْ تَشَاءُ "तू जिसे चाहता है इज़्ज़त देता है और जिसे चाहता है ज़लील करता है"। उसका इख़्तियार मुतलक है। इसका हाथ कोई नहीं रोक सकता। वो चाहता तो आने वाहिद में अबू जहल को हिदायत दे दाता। يَغْفِرُ لِمَن يَشَاءُ وَيُعَذِّبُ مَن يَشَاءُ "वो जिसको चाहता है अज़ाब देता है और जिसको चाहता है बख़्श देता है"।(अल माइदह:18) अगर वो अबूजहल को बख़्शना चाहे तो इसे معاذالله कौन रोकेगा ! और अगर वो किसी बड़े से बड़े नैक आदमी को जहन्नम में झोंकना चाहे तो इसका इख़्तियार मुत्लक़ है, इसे कोई नहीं रोक सकता।

हमारा और अहले तशीअ के माबैन अक़ाइद में एक बड़ा बुनियादी इख़्तिलाफ़ है कि हम अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर अदल वाजिब नहीं समझते, जबकि इनके नज़दीक अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर अदल वाजिब है। इनके नज़दीक मुजरिम को सज़ा देना अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर वाजिब है और बेगुनाहों को सज़ा नहीं देना इस पर वाजिब है, जबकि हमारे नज़दीक ऐसा नहीं है। वो मालिकुल मुल्क है, मुख़्तारे मुतलक है, मश्यते मुत्लिक़ा का हामिल है, वो बड़े से बड़े नैको कार को भी जहन्नम में झोंकने में बाइख़्तियार है। अल्बत्ता यह हम जानते हैं कि वो नहीं झोंकेगा। अम्र वाक़अ (De facto position) कोई और है, लेकिन इस पर कोई चीज़ वाजिब नहीं। इसलिए कि जब किसी पर कोई चीज़ वाजिब हो गई तो वो मुतलक शान तो ना रही! हमारे नज़दीक अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की शान है ही मुतलक। अगर हम अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर अदल को वाजिब मानें तो वो तो गोया एक क़ानून का पाबन्द हो गया। हालांके इसकी शान तो यह है कि इसने जो क़ानून ख़ुद बनाए इसका भी पाबंद नहीं, जब चाहे उन्हें तोड़ दे। इसने आग में जलाने का वसफ़ रखा है लेकिन जब चाहे इसे सलब करले। वो अपने बनाए हुए क़वानीन जब चाहे तोड़े, वो अपनी मिल्क में जिस तरह चाहे तसरफ़ करे, इसका इख़्तियार मुतलक है। जबकि हमारे इख़्तियार और हमारी मश्यत की क्या हैसियत है? फ़रमाया गया وَمَا تَشَاءُونَ إِلَّا أَن يَشَاءَ اللَّهُ इसके दो बड़े प्यारे तर्जुमें किये गए हैं। एक यह के "और तुम्हारे चाहे कुछ नहीं होगा जब तक अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ना चाहे"।(अद्दहर:30) लेकिन यह तो है नतीजा के एतबार से, यह लफ़्ज़ी तर्जुमा नहीं बल्कि मुहतात तर्जुमानी है। दूसरा तर्जुमा है:

"और तुम चाह भी नहीं सकते जब तक के अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ना चाहे"। यह है अस्ल में अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुतलक कि मश्यत भी इसकी मश्यत के ताबेअ है। तुम चाह भी नहीं सकते जब तक के वो ना चाहे। यह अस्ल में तौहीद का वो मक़ाम के जहां इंसान का इरादा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इरादे में फ़ना हो जाता है कि परवरदिगार! जो तू चाहे बस वही है, मैं क्या चीज़ हूं और मेरी मश्यत और इरादे की क्या हैसियत है! इसमें चोटी की बात यह है के सय्यदुल मुर्सलिन, महबूब रब्बुल आलमिन हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की मश्यत के हवाले कि अगर धोखा हो सकता तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने पैश बन्दी के तौर पर फरमा दिया:

(إِنَّكَ لَا تَهْدِى مَنْ أَحْبَبْتَ وَلَٰكِنَّ ٱللَّهَ يَهْدِى مَن يَشَآءُ)

"यक़ीनन (ऐ नबी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ!) आप नहीं हिदायत दे सकते जिसे भी आप चाहें लेकिन अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ हिदायत देता है जिसको चाहता है"।(अल क़सस:56)

अब इस तन्बीहा और राहनुमाई के बाद कहां शिर्क का इन्कान बाक़ी रह सकता है! क़ुरआन मजीद ने तो ऐसे सब रास्ते मस्दूद कर दिये हैं जिनसे शिर्क दर आ सकता था। और नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के साथ यह अंदाज़ेतखातिब है ही इसलिए के कहीं मुग़ालते का शाएबा भी पैदा ना हो जाए, और यह इसी का नतीजा है कि अल्लाह का शुक्र है कि यह उम्मत बहैसियत मज्मूई शिर्क से बची हुई है।

ख़ुदा और इंसान की हयात का तक़ाबिल

अब आइयह हयात की तरफ़। हम भी ज़िंदा हैं और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ भी ज़िंदा है, लेकिन हमारी ज़िंदगी अव्वल तो यह कि अपनी नहीं बल्कि अताई है। लाई हयात आए, क़ज़ा ले चली चले"। दूसरे यह के इस हयात का दारो मदार अस्बाब पर है। खाएंगे तो ज़िंदा रहेंगे वर्ना मर जाएंगे, आकसीजन हासिल ना रहे तो मर जाऐंगे। अगर पंद्रह बीस दिन मुसलसल जागें तो मोत वाक़अ हो जाएगी। मालूम हुआ के यह हयात बड़ी ही कमज़ोर और बेचारी है। यह बड़ी मजबूर ज़िंदगी है जो दूसरों के सहारे पर क़ायम है। इसके साथ ज़अफ़ और अहतयाज है, आराम और नींद की ज़रूरत है। जबकि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की हयात क्या है? आयतल कुर्सी में है ٱللَّهُ لَآ إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ ٱلْحَىُّ ٱلْقَيُّومُ ۚ لَا تَأْخُذُهُۥ سِنَةٌ وَلَا نَوْمٌ।कि इसकी ज़िंदगी तो वो ज़िंदगी है जिसमें ना ऊंघ है और ना नींद है। इसकी कुव्वतों में कोई अज़्महलाल पैदा नहीं होता।(अल बक़रह:255) अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का इर्शाद है:

وَلَقَدْ خَلَقْنَا السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ وَمَا بَيْنَهُمَا فِي سِتَّةِ أَيَّامٍ وَمَا مَسَّنَا مِن لُّغُوبٍ ﴿38﴾

“और हमने आसमान और ज़मीन और जो कुछ इनके माबैन है, छह दिनों में पैदा किया और हम पर कोई थकान नहीं हुई”।(सुरह ق)

यानी ख़ालिक़े कायनात की ज़िंदी को अपनी ज़िंदगी के मज़ाहिर पर क़यास ना कर बैठना। उसकी ज़िंदगी अस्बाब और सहारों के बल पर क़ायम नहीं, बल्कि क़ायम बिज़्ज़ात है, अताई नहीं बल्कि ज़ाती है। अब ज़रा सोचिए कि हमारी ज़िंदगी को उसकी ज़िंदगी के मुक़ाबले में ज़िंदगी कहा जा सकता है? यह तो सिर्फ़ सूरते हयात है, हयात नहीं है। हयात तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है। इसी तरह हमारे पास सिर्फ़ सूरते इल्म है, इल्म नहीं है। अल इल्म तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है। हमारे अन्दर तो सिर्फ़ इरादे की एक सूरत है, हक़ीक़तन और मुत्लक़न इरादा तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का है। हमारे अन्दर मश्यत की एक सिर्फ़ झलक सी है, जबकि अस्ल मश्यत तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की है। इससे यह नतीजा निकला कि मख़्लूक़ात की जुम्ला सिफ़ात को जब सिफ़ाते ख़ालिक़ के मुक़ाबले में रखा जाएगा तो कहा जाएगा कि यह मअदूम के दर्जे में हैं, इनकी हक़ीक़त कुछ नहीं है। हमारे पास कुछ इल्म है, लेकिन अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इल्म के मुक़ाबले में कुछ नहीं है। हमारे अन्दर हयात है, लेकिन हयाते ख़ुदा वन्दी के मुक़ाबले में कुछ नहीं है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के मुक़ाबले में हमें कोई क़ुदरत, इल्म, मश्यत हासिल नहीं है।

मैं इस अहम बहस के लिए नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के क़ौले मुबारक से सनद पैश करता हूं। नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने सहाबा رَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ को दुआए इस्तख़ारा सिखायी। इस दुआ की अज़्मत का यह आलम है कि सहाबाए कराम رَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ फ़रमाते हैं कि आप صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने हमें यह दुआ इस तरह तल्क़ीन फ़रमायी जैसे क़ुरआन मजीद की कोई सूरह हो। दुआए इस्तख़ारा के अल्फ़ाज़ हैं ((اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَسْتَخِیْرُكَ بِعِلْمِكَ وَاَسْتَقْدِرُكَ بِقُدْرَتِكَ وَاَسْاَلُكَ مِنْ فَضْلِكَ الْعَظِیْمِ……))

“ऐ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ! मैं तेरे इल्म से ख़ैर की भीख मांगता हूं, और तेरी क़ुदरत से कुछ क़ुदरत की भीख मांगता हूं और मैं तेरे फ़ज़्ले अज़ीम से कुछ सवाल कर रहा हूं”। जैसे हज़रत मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ के अल्फ़ाज़ सूरतुल क़सस में आए हैं:(رَبِّ إِنِّي لِمَا أَنزَلْتَ إِلَيَّ مِنْ خَيْرٍ فَقِيرٌ ﴿24﴾) “ऐ मेरे रब! तू जो भी मेरी झोली में डाल दे मैं इसका मुहताज हूं”। मक़ामे अब्दियत तो यही है कि

तुम हर मामले में अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के मुहताज हो। (फ़ातिर:15) दुआए इस्तख़ारा के मज़कूरह बाला तीन जुम्ले मक़ामे अब्दियत की वज़ाहत के लिए बहुत अज़ीम हैं। अगले दो जुमले हैं (فَإِنَّكَ تَقْدِرُ وَلَا أَقْدِرُ وَتَعْلَمُ و لَا أَعْلَمُ......) "पस तुझे ही क़ुदरत हासिल है, मुझे कोई क़ुदरत नहीं, और तू जानता है मुझे कोई इल्म हासिल नहीं।" अब अगर नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ के इन अल्फ़ाज़े मुबारका को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से मुकाबले में ना रखा जाए तो यह, नाऊज़ु बिल्लाह, झूठ हो जाएगा कि "मुझे कोई क़ुदरत और इल्म हासिल नहीं" जबकि इल्म तो हमें भी कुछ ना कुछ हासिल है और नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का तो कहना ही क्या! अस्ल में यहां तक़ाबल है कि ऐ परवरदिगार! तेरे इल्म के मुक़ाबले में मेरा इल्म शून्य है। तेरी क़ुदरत के मुक़ाबले में मेरी क़ुदरत सिफ़र है। तो जब सिफ़ाते मख़्लूक़ का सिफ़ा ते अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ तकाबुल होगा तो मख़्लूक़ की सिफ़ात मअदूम के दर्जे में शुमार होंगी। हज़रत मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ का जो वाक़्आ सूरतुल कहफ़ में नक़ल हुआ है जिसमें अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने हज़रत मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ से फ़रमाया कि जाओ हमारे एक बन्दे के पास जिसे हम इल्मुदद्नी अता फ़रमाया है, तो क़ुरआन मजीद में तो अगरचे यह तफ़्सील मौजूद नहीं है लेकिन रिवायात में आता है कि हज़रत ख़िज़र عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ ने (अगरचे इनका नाम क़ुरआन में नहीं है) हज़रत मूसा عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ से फ़रमाया कि ऐ मूसा! यह जो कश्ती के किनारे पर आकर चिड़या बैठ गई है और इसने समन्दर में चोंच डालकर पानी पिया है तो इस पानी को इस समुन्दर के पानी से जो निसबत है जान लो कुल मख़्लूक़ात के इल्म को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इल्म के मुक़ाबले में यह निस्बत भी हासिल नहीं।

अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का वजूद और नज़रया-ए-वहदतुल वजूद

अब ज़रा नज़रिया "वहदतुल वजूद" की बहस की तरफ़ आइए कि सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का वजूद मुत्लक़ है, क़दीम है और दाइम है, जबकि मासिवा का वजूद अताई है, महदूद है, हादिस और फ़ानी है। गोया वजूद तो सिर्फ़ इसी का है, किसी और का कोई वजूद नहीं। यह मासिवा से वजूद की नफ़ी है। यह "वहदतुल वजूद" है और दर हक़ीक़त यह तौहीद फ़िस्सात की बुलन्द तरीन मन्ज़िल है। जो यहां नहीं पहुंचा वो फ़िकरी सतह के एतबार से तौहीद की

आख़िरी मंज़िल तक नहीं पहुंचा। में यह वज़ाहत भी करता चलुं के हमारे वो सूफ़ियाए कराम जो अगरचे “वहदतुल वजूद” के क़ाइल हैं, लेकिन उन्होंने “वहदतुल वजूद” को “हुमा अवस्त” (Pantheism) के साथ ख़लत मबहस (confuse) कर दिया है, मसलन, मसलन इब्न अरबी, मौलाना रोम और दीगर नामवर सूफ़ियाअ, इनके बारे में लोग सूएज़न में मुबतला हैं। कुछ लोग तो इन्हें बिला ताअमल मुशरिक कह देते हैं और बाक़ी लोगों की राए भी यह है कि वो गुमराही की तरफ़ चले गए। देखिए नज़रिया “हमा अवस्त” को तो मै भी कुफ़्र और शिर्क समझता हूं। लेकिन हुमा अवस्त और वहदतुल वजूद के फ़र्क़ को जान लीजिए ! हुमा अवस्त” को यूं समझिए के बरफ़ पिघल कर पानी बन गया तो बर्फ़ मअदम हो गई और अब पानी ही बर्फ़ है। इस एतबार से तो यह कायनात हक़ीक़त क़रार पाती है और नाऊज़ु बिल्ल्ह, ख़ुदा इसमें गुम हो जाता है। जबकि वहदतुल वजूद यह है कि हक़ीक़ते वजूद सिर्फ़ ख़ुदा के लिए और मासिवा का वजूद ही नहीं है। तो इन दोनों नज़रियात में ज़मीन व आसमान का फ़र्फ़ वाक़्य हो गया और यह एक दूसरे की ज़िद हो गए। इललिए के “हुमा अवस्त” में मख़्लूक़ हक़ीक़त है और ख़ालिक़ इसमें गुम है और “वहदतुल वजूद” में ख़ालिक़ और मख़्लूक़ का वजूद गुम है। लिहाज़ा जब इन दोनों नज़रियात को ख़लत मबहस किया गया तो बहुत से लोगों को मुग़ालता हो गया। जब यह confusion ज़्यादा हुआ तो इसमें हज़रत मजदद अलिफ़ सानी शैख़ अहमद सर हिन्दी رَحۡمَةُاللّٰہِ ने इस्लाह की और उन्होंने “वहदतुल वजूद के बजाए” वहदतुश्शहूद” का नज़रिया पैश किया।

वहदतुश्शहूद यह है कि हक़ीक़ी वजूद सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का है और कायनात का वजूद एतबारी है और उसका महज़ अक्स है। जैसे अस्ल वजूद दरख़्त का होता है, लेकिन इसका साया जो ज़मीन पर पड़ रहा होता है वो नज़र तो आ रहा है लेकिन इसका वजूद कोई नहीं होता। ऐसे ही यह सारी कायनात अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के अस्माओ सिफ़ात के अज़्लाल और साए हैं और इनकी कोई ज़ाती हक़ीक़त नहीं है। जैसे केसी शायर ने कहा :

كلُّ ما فى الكون وهمٌ او خيال
او عكوسٌ فى المرايا او ظلال

जो कुछ इस कायनात में है वो महज़ वहम है या ख़्याल है, या जैसे शीशे में कोई अक्स होता है या साया। आप शीशे में नज़र तो आ रहे होते हैं लेकिन वहां होते नहीं हैं। इसे एक

मिसाल से यूं वाज़ेह किया गया कि एक लकड़ी लेकर इसके एक सिरे पर कपड़ा बांधें और इसके ऊपर मिट्टी का तेल डाल कर आग लगा दें और इसे एक दायरे में तेज़ी के साथ हरकत दें तो देखने वलों को यह एक आतिशें दायरा नज़र आता है, लेकिन दर हक़ीक़त वो आग का दायरा नहीं होता, बल्कि शोले की हरकत आतिशें दायरा का रूप धार लेती है। अब देखिए इस नज़रिया में कायनात और मासिवा की नफ़ी हो गई और इस्बात सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का हुआ। "वहदतुल वजूद" और वहदतुश्शहूद" में सिर्फ़ तअबीर का फ़र्क़ है, और हज़रत अलिफ़ सानी رَحْمَةُاللّٰهِ ने लोगों को समझाने के लिए यह फ़र्क़ किया है। यह महज़ समझाने का एक लतीफ़ सा अन्दाज़ है।

इसकी एक और बहतरीन तमसील इस दौर में मौलाना मनाज़िर अहसन गीलानी رَحْمَةُاللّٰهِ ने यह बयान की कि तुम ज़रा तसव्वुर करके अपने ज़हन में ताज महल या मीनारे पाकिस्तान का नक़्शा ले आओ। यह गोया तुमहारी महज़ एक ख़्याली तख़्लीक़ है जो तुम्हारे ज़हन में है ओर तुम्हारे ज़हन से बाहर इसका कोई वजूद नहीं। इसके ऊपर भी तुम हो, इसके नीचे भी तुम हो, इसके बाहर भी तुम हो और इसके अन्दर भी तुम हो। तो यही निस्बत ख़ालिक़ व मख़्लूक़ के माबैन है। क़ुरआन मजीद अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के बारे में फरमाता है: (هُوَ الْأَوَّلُ وَالْآخِرُ وَالظَّاهِرُ وَالْبَاطِنُ)वही अव्वल है, वही आख़िर है, वही ज़ाहिर है और वही बातिन है"।(अल हदीद:3) और यह कायनात महज़ इसके ख़्याल के मान्निद है। हमारा ख़्याल तो बड़ा कमज़ोर सा ख़्याल है लेकिन अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का ख़्याल बड़ा ठोस और पुख़्ता है। अलबत्ता यह जान लीजिये , कि जिस तरह हमारी ज़हनी तस्वीर का इन्हसार और क़याम हमारी तवज्जो पर होता है, जैसे ही तवज्जो बटती है तस्वीर भी ज़हन से महो हो जाती है, इसी तरह इस कायनात का क़याम भी अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ की तवज्जो से है। उसकी तवज्जो हटे तो यह मअदूम है। इसी लिए कहा गया कि वो अल हय्युल क़य्युम है, अज़ ख़ुद है और इस कायनात को थामे हुए है। जैसे तुम अपनी तवज्जो को मरतकज़ रखोगे तो वो हयोला तुम्हारे ज़हन में रहेगै, तुम उसके क़य्युम हो, ऐसे ही अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ पूरी कायनात का अलक़य्युम है, इसे थामे हुए है।

शफ़ाअत का मस्अला क़ुरआन व हदीस की रौशनी में

आगे बढ़ने से पहले मैं “शिर्क फ़िस्सिफ़ात” के ज़ेल में “मसअला शिफ़ाअत” की क़दरे वज़ाहत कर देना चाहता हूं। अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इज़्न के साथ शफ़ाअत क़ुरआन व हदीस दोनों से साबित है। इसका इंकार करने वाला क़ुरआन और हदीस दोनों की नसूस का मुन्किर हो जाएगा। आयतल कुर्सी में इर्शादे इलाही है: مَن ذَا الَّذِى يَشْفَعُ عِندَهُۥٓ إِلَّا بِإِذْنِهِۦ

कौन है जो उस (अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ) की जनाब में उसकी इजाज़त के बग़ैर शफ़ाअत कर सके? (बक़रह:255)

सूरह ताहा में फ़रमाया गया

يَوْمَئِذٍ لَّا تَنفَعُ الشَّفَاعَةُ إِلَّا مَنْ أَذِنَ لَهُ الرَّحْمَٰنُ وَرَضِىَ لَهُۥ قَوْلًا ﴿109﴾

“उस रोज़ शफ़ाअत कारगर ना होगी, इल्ला यह कि किसी को रहमान इसकी इजाज़त दे और उसकी बात सुनना पसंद करे।” अल्बत्ता अगर किसी के ज़हन में शफ़ाअत का तसव्वुर यह है कि कोई हस्ती इतनी ज़ोर आवर है कि वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के अदल के रास्ते में معاذالله रुकावट बन सकती है, और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कुछ करवा सकती है तो यह यक़ीनन शिर्क है। इसलिए कि इसमें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَालَىٰ की यह शाने यक्ताई ((कि वो ﴿يَفْعَلُ مَا يَشَآءُ﴾ है, ﴿فَعَّالٌ لِّمَا يُرِيدُ﴾ है, ﴿عَلَىٰ كُلِّ شَىْءٍ قَدِيرٌ﴾ है,)) मजरूह होकर रह जाती है। फिर तो वो معاذالله किसी और की मर्ज़ी का पाबंद और किसी और से इज़्न का ख़्वाहां बन कर रह जाएगा। फिर तो वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ना रहा, इसलिए कि उसका इख़्तियार और इसकी क़ुव्वत महदूद हो गई ? जबकि अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ तो वही है जिसकी क़ुव्वत और इख़्तियारात ला महदूद हैं।

दर हक़ीक़त मश्यत मुत्लिक़ा और इरादा-ए-मुतलक सिर्फ़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है, किसी और के लिए नहीं है। अल्बत्ता अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तरफ़ से इज़्न पाकर शफ़ाअत करना यह यक़ीनन क़ुरआन व हदीस दोनों से साबित है। और यह शफ़ाअत सिर्फ़ क़यामत के दिन ही नहीं होगी, अब भी हो रही है। कोई भी शख़्स जब किसी दूसरे के लिए दुआ करता है तो वो शफ़ाअत है। “शफ़अ” दरअस्ल दो (2) को कहते हैं। जैसे सूरतुल फ़ज्र में फ़रमाया गया: وَالشَّفْعِ وَالْوَتْرِ ﴿3﴾ “और क़सम है जुफ़्त और ताक़ की”। तो शफ़ाअत यह है कि आप ने अपनी दरखवास्त कहीं पेश की और किसी ने आपके लिए सिफ़ारिश भी की। तो यह सिफ़ारिश दर अस्ल शफ़ाअत है कि उसने अपनी बात भी आपकी बात के साथ जोड़ दी तो

बात दोहरी हो गई। यानी एक साइल है जो अपना सवाल पेश कर रहा है और एक और है जो उसकी सिफ़ारिश कर रहा है। नबी-ए-अकरम ﷺ की हयाते तय्यबा के दौरान भी यह होता था कि किसी मुसलमान से किसी ख़ता या ग़लती का सुदूर हो जाता तो वो ख़ुद भी अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से अस्तग़फ़ार करता था और नबी-ए-अकरम ﷺ की ख़िदमत में भी हाज़िर होता था कि आप ﷺ भी अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से मेरे लिए सिफ़ारिश करें। यह नबी-ए-अकरम ﷺ की तरफ़ से अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की बारगाह में उस मुसलमान के लिए शफ़ाअत थी। इसी तरह क़ुरआन मजीद से साबित है कि फ़रिश्ते भी इंसानों के लिए शफ़ाअत करते रहते हैं। (وَيَسْتَغْفِرُونَ لِمَن فِي الْأَرْضِ) "वो ज़मीन वालों के लिए (अपने परवरदिगार से) अस्तग़फ़ार करते रहते हैं।" (अश्शूरा:5) इसी तरह मामला मैदाने हशर में होगा। अम्बिया, सद्दिक़ीन, शोहदाअ और सालिहीन को अपने अपने मरातिब के मुताबिक़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तरफ़ से इजाज़त मिलेगी कि वो भी गुनाहगारों के हक़ में शफ़ाअत करें। अल्बत्ता अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इज़न के बग़ैर कोई हस्ती भी किसी के लिए शफ़ाअत नहीं कर सकेगी। इर्शादे इलाही है:

يَوْمَ يَقُومُ الرُّوحُ وَالْمَلَائِكَةُ صَفًّا ۖ لَّا يَتَكَلَّمُونَ إِلَّا مَنْ أَذِنَ لَهُ الرَّحْمَٰنُ وَقَالَ صَوَابًا ﴿38﴾

"(उस रोज़) कोई ना बोलेगा (किसी को कलाम करने का याराना ना होगा) सिवाए उसके जिसे रहमान इजाज़त दे और वो ठीक बात कहे।" (सुरह नबा : 38) तो शफ़ाअत का मुतलक इन्कार क़ुरआन मजीद और अहादीसे नबविया ﷺ की नसूस का इन्कार है। अल्बत्ता शफ़ाअत का जो एक अवामी और जाहिलाना तसव्वुर है कि

ख़ुदा जिन्हे पकड़े छुड़ा ले मुहम्मद
मुहम्मद दे पकड़े छुड़ा कोई नहीं सकता

यह शिर्क की बदतरीन सूरत है। इसमें नाऊज़ु बिल्लाह, अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मश्यत पर एक और मश्यत ग़ालिब आ रही है और इसके इरादे पर एक और इरादा मुस्तव्वली हो रहा है।

“शिर्क फ़िल हुक़ूक़” या शिर्क फ़िल इबादत” ”شرک فی الحقوق“ یا ”شرک فی العبادت“

अगर हम अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक़ूक़ को शुमार करने लग जाएं तो वो बेशुमार हो जाऐंगे, लेकिन “हाथी के पाऊं में सबका पाऊं” के मस्दाक़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का एक हक़ ऐसा है कि जिसमें उसके सारे हुक़ूक़ आ जाते हैं, और वो हक़ है “इबादत”। चुनांचे “शिर्क फ़िल हुक़ूक़” मसावी हो जाएगा “शिर्क फ़िल इबादत के। क़ुरआन मजीद में यह मज़मून बेशुमार मर्तबा आया है कि तमाम रसूलों की दावत इसी हवाले से है कि “अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इबादत करो, अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सिवा किसी और की इबादत ना करो”। सूरह हूद की इब्तदाई आयात में बताया गया कि क़ुरआन मजीद का मक़्सदे नज़ूल और मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की बअसत की ग़र्ज़ व ग़ायत क्या है। फ़रमाया:

الر ۚ كِتَابٌ أُحْكِمَتْ آيَاتُهُ ثُمَّ فُصِّلَتْ مِن لَّدُنْ حَكِيمٍ خَبِيرٍ ﴿١﴾ أَلَّا تَعْبُدُوا إِلَّا اللَّهَ ۚ إِنَّنِي لَكُم مِّنْهُ نَذِيرٌ وَبَشِيرٌ ﴿٢﴾

“अलिफ़, लाम, रा। यह वह किताब है जिसकी आयात पुख़्ता की गईं फिर वो खोली गईं (इनकी तफ़्सीर की गई) उस हस्ती की तरफ़ से जो कमाले हिक्मत वाली है, तमाम चीजों से बाख़बर है। (और यह इसलिए नाज़िल हुई) कि इबादत ना करो मगर अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की। यक़ीनन मैं तुम्हारे लिए अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की तरफ़ से ख़बरदार करने वाला और ख़ुशख़बरी सुनाने वाला हूं”।

यानी जो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सिवा किसी की इबादत ना करें और “तौहीद फ़िल इबादत” के मेयार पर पूरे उतर जाएं उनके लिए मैं बशारत देने वाला हूं कि इनके लिए नेअमतों वाली जन्नतें हैं। और जो इस मेयार पर पूरे ना उतरें इनके लिए मैं ख़बरदार करने वाला हूं कि इनके लिए इनके रब के पास बड़ा दर्दनाक अज़ाब है।

सूरह कहफ़ की आख़िरी आयत में नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से कहलवाया गया:

قُلْ إِنَّمَا أَنَا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ يُوحَىٰ إِلَيَّ أَنَّمَا إِلَٰهُكُمْ إِلَٰهٌ وَاحِدٌ ۖ فَمَن كَانَ يَرْجُو لِقَاءَ رَبِّهِ فَلْيَعْمَلْ عَمَلًا صَالِحًا وَلَا يُشْرِكْ بِعِبَادَةِ رَبِّهِ أَحَدًا ﴿١١٠﴾

ऐ नबी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ! कह दीजिये कि मैं तो एक इंसान हूं तुम ही जैसा, मेरी तरफ़ वहही की जाती है कि तुम्हारा माबूद बस एक ही है। पस जो कोई अपने रब की मुलाक़ात का उम्मीदवार हो उसे चाहिए कि नेक अमल करे और अपने रब की इबादत में किसी को शरीक ना ठहराए ।

“इबादत” का मफ़्हूम और इसके अज्ज़ाअ

"शिर्क फ़िल्हुक़ूक़" या बा अल्फ़ाज़े दीगर "शिर्क फ़िल इबादत" को समझने के लिए हमें सबसे पहले लफ़्ज़ "इबादत" को समझना होगा। अरबी में "अब्द" ग़ुलाम और बन्दे को और "इबादत" ग़ुलामी और बन्दगी को कहते हैं। क़ुरआन मजीद की मशहूर आयते मुबारका है : (وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنسَ إِلَّا لِيَعْبُدُونِ ﴿56﴾) (अज़ ज़ारियात) इसकी सहीह तरीन तर्जुमानी की है शैख़ सअदी رَحِمَهُ اللّٰه ने के:

ज़िंदगी आमद बराए बन्दगी

ज़िंदगी बेबन्दगी शर्मिन्दगी!

यो तो हुआ लफ़्ज़ "इबादत" का मअना व मफ़्हूम। इस्तलाह में "इबादत" अस्ल में क्या है, इमाम इब्न-ए-तैमियाرَحِمَهُ اللّٰه और हाफ़िज़ इब्न-ए-कय्यिमرَحِمَهُ اللّٰه ने इसकी सहीह तरीन और जामेअ तरीन तअबीर की है, गोया दरया को कूज़े में बन्द कर दिया है, कि "اَلْعِبَادَةُ تَجْمَعُ اَصْلَيْنِ": कि इबादत दो बुनियादो या दो जड़ों को अपने अन्दर जमा करती है, यानी इसके दो बुनियादी अज्ज़ाअ हैं जिनके मिलने से यह इबादत वजूद में आती है। और वो हैं 'غَايَةُ الْحُبِّ مَعَ غَايَةِ الذُّلِّ وَالْخُضُوْعِ' के एक तरफ़ तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى के साथ इन्तहा दर्जे की मुहब्बत हो और उसके साथ जमा हो जाए इन्तहाई दर्जे की आजिज़ि व अन्कसारी कि बन्दा अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى के सामने बिछ जाए, अपने आपको उसके सामने पस्त कर दे। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى की मर्ज़ी और पसंद के मुक़ाबले में इसकी अपनी कोई मर्ज़ी और पसंद बाक़ी ना रहे। जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى को पसन्द हो वही इस बन्दे को पसन्द हो और जो अल्लाहجَلَّ جَلَالُهُ की मर्ज़ी हो इसी पर वो राज़ी हो। जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى का हुक्म हो वो इसे बसर व चश्म बजा लाए और अपनी ज़िंदगी के ग़ायत ही यह समझे के बस अपने आक़ा, अपने मालिक, अपने रब को राज़ी करना है। इसकी रज़ा जोई ही इसकी ज़िंदगी का मक़सूद हो।

वैसे तो लफ़्ज़ "अबद" ग़ुलाम के मअना में आता है और ग़ुलामी के अन्दर एक जबर का मफ़्हूम है। दुनिया में जब भी कोई किसी का ग़ुलाम होता था या अब भी जो क़ौमें दूसरी क़ौमों की ग़ुलाम होती हैं तो इस ग़ुलामी में जबर का पहलू होता है। यह मजबूरी और मारे बान्धे की ग़ुलामी होती है। कोई अपनी मर्ज़ी से किसी का ग़ुलाम नहीं बनता, बल्कि दूसरा उस पर मुसल्लत हो जाता है। लफ़्ज़ "अब्द" के मफ़्हूम में चूंके जबर का पहलू शामिल है

इसलिए जब दीन के अन्दर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इबादत का तसव्वुर ज़ेरे हबस आएगा तो यह सराहत ज़रूरी होगी कि इसमें गुलामी का वो अन्सर तो बतमाम व कमाल मौजूद होना चाहिए कि जैसे एक गुलाम अपने आक़ा का मुतीअ और फरमाबरदार होता है , लेकिन इस में कोई पहलू जबर का नहीं होना चाहिये । बल्कि अपने आका और माबूद की मुहब्बत के जज़्बे से सरशार होकर अपने आपको इसके सामने बिछा दिया जाए , और इसकी बन्दगी अपनी आज़ाद मर्ज़ी से इख़्तियार की जाए, जबर से नहीं। गोया इबादत के दो अज्ज़ाअ हैं, एक है कुल्ली इताअत और एक है मुहब्बत । मुहब्बत इस अताअत की असल रूह-ए-बातिनी है। इन दोनों के माबैन बाहमी निस्बत व तनासुब वही है जो हमारे इस मादी वजूद और रूहानी वजूद के माबैन है। जैसे हमारा जो जिस्म ज़ाहिरी है, नज़र तो यही आता है, सारा वज़न इसी का है, लेकिन इस में जो असल हकीकत है वह जान है , रूह है , उसी से यह जिस्म कायम है , वर्ना तो यह मुतअफ़न ढेर बन जाएगा, क़रीब तरीन अज़ज़ह व अक़ारिब भी दूर भागेंगे। मैं यहां लफ़्ज़ “रूह” को “जान” के हम मअना के तौर पर इस्तेमाल कर रहा हूं, जो ग़लतुल आम तसव्वुर है। इस वक़्त “रूह” और “जान” का फ़र्क़ ज़ेरे बहस नहीं है। तो जैसे निगाह में आने वाला हमारा यह ज़ाहिरी वजूद है, वज़न इसी का है, लेकिन इसमें अस्ल क़द्र व क़ीमत उस रूहे बातनी की है जो इसके अन्दर सरायत किये हुए है, बिल्कुल इसी तरह इबादत का अस्ल जसद तो इताअत है, नज़र तो यही आएगा कि फ़लां आदमी ने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का हुक्म माना, इसने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक्म के मुताबिक़ नमाज़ पढ़ी, इसने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक्म के मुताबिक़ रोज़ा रखा, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक्म के मुताबिक़ फ़लां चीज़ को हलाल जाना और फ़ला चीज़ को हराम जाना, लेकिन अगर इसमें महुब्बत का पहलू नहीं है तो फिर यह इबादत एक बेजान जसद है, जिसमें कोई रूह नहीं है। अल्लामा इक़बाल ने इस दौर में इसे ख़ूब वाज़ेह किया है कि

शौक़ तेरा अगर ना हो मेरी नमाज़ का इमाम
मेरा क़याम भी हिजाब ! मेरा सुजूद भी हिजाब !
और
अक़्ल व दिल व निगाह का मुर्शिदे अव्वलीं है इश्क़
इश्क़ ना हो तो शरअ व दीं बुत कदाहे तसव्वुरात

अगर इबादत के अन्दर मुहब्बत-ए-ख़ुदा वन्दी की रूह जारी व सारी ना हो तो यह आमाल महज़ रसम बन कर रह जाते हैं। तो इबादत के यह दो अज्ज़ा अ बहुत अहम हैं, एक इताअते कुल्ली और दूसरा मुहब्बते ख़ुदा वन्दी।

इबादत के ज़ेल में तीसरी चीज़ कुछ मरासिमे उबूदियत हैं जो अपनी बन्दगी को ज़ाहिर करने के लिए होते हैं। इंसान का हमेशा से यह क़ायदह रहा है कि किसी की ताअज़ीम और नियाज़ मन्दी के इज़्हार के लिए वो कुछ सूरतें इख़्तियार करता है, मसलन जिसकी ताअज़ीम मक़सूद हो इन्सान दस्त बस्ता इसके सामने खड़ा होता है। बादशाहों के सामने सीना तान कर नहीं बल्कि झुक कर खड़ा हो जाता है। फिर जिसकी मज़ीद तअज़ीम मक़सूद हो उसके सामने रकूअ किया जाता है और इससे आगे बढ़ कर सजदा किया जाता है। सूरज की तअज़ीम मक़सूद हो तो लोग सूरज के सामने सरन्गों हो जाते हैं, सर बसजूद हो जाते हैं। तो यह ज़ाहिरी आमाल के जिनमें इस इबादत के जज़्बे का इज़्हार होता है, मरासिमे उबूदियत कहलाते हैं।

इबादत के ज़ेल में भी चौथी बहस "दुआ" है जो इबादत का लब्बे लबाब और अस्ल ख़ुलासा है। किसी हस्ती को पुकारा जाता है उसे मुश्किल कुशा, हाजत रवा, तक्लीफ़ों का दूर करने वाला समझ कर। इसे क़ादिरे मुतलक समझते हैं तब ही तो इसे पुकारते हैं! इसे समीअ व बसीर समझते हैं तब ही तो इसे पुकारते हैं! इसे समझते हैं कि वो हमारी तक्लीफ़ें रफ़अ कर सकता है तो इससे अस्तग़ासा करते हैं, अस्तदआ करते हैं। नबी-ए-अकरम ﷺ ने फ़रमाया: ((اَلدُّعَاءُ هُوَ الْعِبَادَةُ)) "दुआ ही अस्ल इबादत है"।

एक और जगह इर्शादे नबवी ﷺ है: ((اَلدُّعَاءُ مُخُّ الْعِبَادَةِ)) "इबादत का जौहर दुआ है"।

इबादत के ज़ेल में पांचवीं और आख़िरी बहस है ख़ुलूस व इख़्लास। कोई इबादत अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की बारगाह में कुबूल नहीं है जब तक के उसमें ख़ुलूस और इख़्लास ना हो। ख़ुलूस और इख़्लास की ज़िद है रियाकारी, यानी महज़ लोगों को दिखाने के लिए को अमल करना। इसी के साथ एक लफ़्ज़ आता है "समअहू"। यानी महज़ लोगों को सुनाने के लिए कोई अमल अन्जाम देना। "रिया" है दिखाना और "समअहू" है सुनाना। तो इबादत में जब रिया और सुमअहू आ जाएंगे तो वो इबादत क़बूल नहीं होगी, इसलिए के ख़ुलूस व इख़्लास

जो क़बूलियत की अस्ल शर्त है, वो मफ़्क़ूद है। चुनांचे क़ुरआन मजीद में इसको भी वाज़ेह किया गया (وَمَا أُمِرُوا إِلَّا لِيَعْبُدُوا اللَّهَ مُخْلِصِينَ لَهُ الدِّينَ حُنَفَاءَ)

"और इन्हें तो हुक्म बस यही हुआ था कि वो अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की बन्दगी करें अपने दीन (ग़ुलामी और इताअत) को उसके लिए ख़ालिस करते हुए, यकसू होकर।" (अल बैय्यनह:5)

अगर इबादत में अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ किसी और को भी कुछ दिखाने और सुनाने का अन्सर शामिल हो गया, लोगों से अपनी ताअरीफ़ कराना या कोई और दुन्यवी मन्फ़अत हासिल करना मक़्सद के तौर पर पैशे नज़र हुआ तो गोया ख़ुलूस और इख़्लास ख़त्म हुआ और इबादत में रिया और सुम्आ शामिल हो गए और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हां ऐसी इबादत मर्दूद शुमार होगी। तो इबादत के यह पांच पहलू या पांच अज्ज़ाअ ज़हन में मुतअयीन कर लीजिए। यानी: (1) इताअत (2) मुहब्बत (3) मरासिमे उबूदियत (4) दुआ, जो इबादत का जौहर है, और (5) ख़ुलूस व इख़्लास, जो क़बूलियते इबादत की शर्त है, और इसकी ज़िद है रिया और सुम्आ।

अब हम इन पांच उन्वानात के तहत यह समझेंगे के "शिर्क फ़िल इबादत" है क्या! इसमें कुछ अश्कालात आपके ज़हनों में ला महाला आएंगे। चूंके यह मज़ामीन आम तौर पर सामने नहीं आते, हमने महज़ चन्द चीज़ों को मुतअयीन कर रखा है कि बस शिर्क यही है और इस शिर्क की हमागीरी और इसकी वस्अत अक्सर व बैश्तर हमारे सामने नहीं है, लिहाज़ा जब यह बातें सामने आती हैं तो बहर हाल इंसान चोंकता है। और इस हवाले से एक सवाल जो क़दम क़दम पर सामने आएगा वो यह है कि इसके माअना तो यह हुए के हर गुनाह शिर्क है ! लेकिन अभी ज़रा इस अशकाल, या इस सवाल या इस अश्तबाह को एक तरफ़ रखिये ! मैं इन्शाअल्लाह आख़िर में पूरी वज़ाहत के साथ इसका जवाब दूंगा। अभी मैं जो बातें कह रहा हूं पहले ज़रा इनके दलाइल पर तवज्जो करते हुए और इनके face value पर इनको समझिए कि वो सहीह हैं या नहीं, दिल को लगती हैं या नहीं। मैं इंशाअल्लाह अल जबरा के फ़ार्मूलों के तरीक़े पर यह बातें आपके सामने रखूंगा।

शिर्क फ़िल इताअत

सबसे पहली चीज़ इताअत है। अब देखिए के "शिर्क फ़िल इताअत" क्या है? इताअत का मफ़्हूम वसीअ है। इताअत अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ इसके रसूल صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की भी है और

इताअत اولوالامر की भी है। اولوالامر कोई एक ही शख़्स नहीं होता, बल्कि मस्जिद में जो इमाम या ख़तीब है वो वहां का वाली-ए-अमर है। किसी बस्ती के अन्दर जो ज़िम्मेदार फ़र्द है वो वहां का वाली-ए-अम्र है। किसी सूबे का जो गवर्नर है वो वाली-ए-अम्र है। आपका जो सरबराहे रियासत है वो वाली-ए-अमर है। और नामालूम कितने वालियान-ए-अम्र मौजूद हैं। जैसा कि नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़रमाया; كُلُّكُمْ رَاعٍ وَّكُلُّكُمْ مَسْئُوْلٌ عَنْ رَّعِيَّتِهٖ "तुम में से हर एक की हैसियत एक चरवाहे की है और तुममें से हर एक से इसकी रअयत के बारे में पूछ गछ होगी"। चुनांचे नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़रमाया कि एक औरत को अपने शोहर के घर पर इसके माल और औलाद पर इख़्तियार हासिल होता है, लिहाज़ा उससे इसके बारे में पुरसश होगी। औलाद अपनी वालिदह की इताअत करती है, इसका कहना मानती है। अब वो अपनी औलाद को अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इताअत की तरफ़ ले गई है या अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मअसियत की तरफ़, इससे इस बारे में बाज़ परस होगी। इसी तरह एक शख़्स जो ख़ानदान का सरबराह है, वो अपने घर में वालिए अमर है। उससे बीवी बच्चों के बारे में पूछा जाएगा कि वो इन्हें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की बन्दगी की तरफ़ ले गया है या अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मअसयत और बग़ावत की तरफ़। तो हर एक शख़्स अपनी अपनी सतह पर वालिए अम्र है, हर शख़्स की हैसियत एक चरवाहे की है। तो अब इस इताअत में उसूल क्या होगा? यानी बड़ों की इताअत, वालदेन की इताअत, असातज़ह की इताअत, उलमा की इताअत, मुर्शिदीन की इताअत, हुकमरानों की इताअत वग़ैरह में "तौहीद फ़िल इताअत" क्या है और "शिर्क फ़िल इताअत" क्या है? इसे नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की अहादीसे मुबारका की रौशनी में समझिए। इस ज़िमन में हमें यह उसूल दे दिया गया है कि: لَا طَاعَةَ لِمَخْلُوْقٍ فِيْ مَعْصِيَةِ الْخَالِقِ
"किसी मख़्लूक़ की इताअत नहीं की जाएगी इस मामले में जिसमें ख़ालिक़ की मअसियत लाज़िम आ रही हो।" मख़्लूक़ की इताअत का इन्कार नहीं है, वालिदैन की इताअत करो, बड़ों की इताअत करो, seniors की इताअत करो, हक्काम की इताअत करो, teachers की इताअत करो, अगर दीनी एतबार से किसी के साथ अपने आपको मुन्सलिक किया है तो इसकी इताअत करो, लेकिन किसी की इताअत अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की माअसियत में नहीं होगी, कोई भी अगर तुम्हें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक्म के ख़िलाफ़ हुक्म देगा तो अब उसकी इताअत नहीं होगी। वहां

इन्की इताअत का दायरा ख़्तम हो जाएगा। अब इनकी मअसियत लाज़िमन की जाएगी और अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ की मअसियत हरगिज़ नहीं की जाएगी। चुनांचे अगर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ की इताअत सुप्रीम है, बाक़ी तमाम इताअतें उसकी इताअत के दाएरे के अन्दर अंदर हैं तो यह "तौहीद फ़िल इताअत" है। अगर किसी एक इताअत को भी इस दाएरे से बाहर निकाल कर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ की इताअत के हम पल्ला कर लिया गया तो यह शिर्क है और अगर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ की इताअत से ऊपर ले गए तो यह शिर्क से भी ज़्यादा घिनाउनी बात है। यह ऐसी बात है कि हर शख़्स का दिल इसकी गवाही देगा और अक़ले आम इसे तसलीम करेगी।

अब ज़रा इस फ़ार्मूले को apply कीजिये और यह इन्तिहाई कठिन मरहला है। इसके लिए मैं एक मिसाल ख़ालिस इन्फ़रादी सतह पर दूंगा और एक मिसाल इज्तिमाइयत की बुलन्द तरीन चोटी की दूंगा। और इन दो के माबैन जो मदारिज व मरातिब हैं, जो ख़ला है इसके ख़ुद पुर कर लीजिये ! ख़ास इंफ़रादी सतह पर देखिए कि मेरा एक नफ़्स है जो मुझे अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के हुक्म के ख़िलाफ़ हुक्म देता है। जैसे हज़रत यूसुफ़ عَلَيْهِ السَّلَامُ ने कहा था:

(وَمَا أُبَرِّئُ نَفْسِيٓۚ إِنَّ النَّفْسَ لَأَمَّارَةٌۢ بِالسُّوءِ)

"और मैं अपने नफ़्स को बरी नहीं ठहराता, यक़ीनन नफ़्स तो बुराई पर उकसाता ही है"।(यूसुफ़:53)

अब असल मस्अला मेरे लिए है, और वो यह कि एक तरफ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का हुक्म है और एक तरफ़ मेरी नफ़्स का हुक्म है। एक मर्ज़ी मेरे मौला की है और एक ख़्वाहिश मेरे नफ़्स की है। मैं चक्की दो पाटों के दरमियान आ गया हूं। जैसे किसी शायर ने कहा :

درمیانِ قعرِ دریا تختہ بندم کردہ ای
باز می گوئی کہ دامن تر مکن ہوشیار باش!

कि तूने मुझे एक तख़्ते पर बांध कर समन्दर के अन्दर फैंक दिया है, और तू चाहता मुझसे यह है कि मेरा दामन तर ना होने पाए। तो इन्सान चक्की के दो पाटों के दरमियान है। एक तरफ़ इसके साथ वो नफ़्स लगा हुआ है जिसके बारे में ख़ुद क़ुरआन यह कह रहा है : إِنَّ النَّفْسَ لَأَمَّارَةٌۢ بِالسُّوءِ और साथ ही यह कहा जाता है कि ہشدار کہ راہ بردم تیغ است قدم را कि होशियार रहो, कहीं तुम्हारा क़दम माअसियत की किसी दलदल के अन्दर फन्स ना जाए ! नफ़्स के साथ यह कशमकश हर रोज़, हर साअत और हर आन है। फ़र्ज़ कीजिये आपने

अज़ान सुन ली है और आपको मालूम हो चुका है के नमाज़ का बुलावा आ चुका है, मेरे रब का हुक्म यह है कि मैं उसकी बारगाह में हाज़िर हो जाऊं, जबकि दूसरी तरफ़ मेरे नफ़्स का भरपूर तक़ाज़ा है कि अभी सोये रहो, आराम करो, यह छोड़ो कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالىٰ की तरफ़ से क्या मुताल्बा है, पहला मेरा तक़ाज़ाए इस्तराहत पूरा करो। अब आप सोचिए के आपने दो इताअतों में से किसको मुअख़्ख़िर किया और किस को मुक़दम किया ! किस को ऊपर कर दिया और किस को नीचे कर दिया ! इन्सान ने किस चीज़ को मक़्दम करना है और किस चीज़ को मोअख़्ख़र करना है مَا قَدَّمَتْ وَاَخَّرَتْ यह फ़ैसला ख़ुद इसे करना है।

और अल्लामा इक़बाल ने कहा था:

बुतों से तुझको उम्मीदें ख़ुदा से नाउम्मीदी
मुझे बता तो सही और काफ़िरी क्या है?

शिर्क और किस बला का नाम है ? शिर्क फ़िल इताअत अगर किसी शै का नाम है तो वो इसके सिवा और क्या है कि यहां नफ़्स को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالىٰ के बराबर कर दिया, बल्कि उससे भी ऊपर ले गए। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالىٰ का हुक्म ताबअ हो गया है नफ़्स की ख़्वाहिश के, और यही शिर्क है। इसके लिए अगर कोई सनद चाहे तो क़ुरआन मजीद में दो जगह यह मज़मून आया है। सूरतुल फ़ुर्क़ान में इर्शाद है: (أَرَأَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ إِلَٰهَهُ هَوَاهُ) "(ऐ नबी صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ) क्या आपने देखा उस शख़्स को जिसने अपनी ख़्वाहिशे नफ़्स को अपना इला बना लिया ?" (आयत 43)

और सूरतुल जसिया में है: (أَفَرَأَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ إِلَٰهَهُ هَوَاهُ)(आयत23) क़ुरआन मजीद अपने मतालिब व मफ़ाहीम में बहुत वाज़ेह है, यह किताबे मुबीन है। इस्लाम में दाख़िले नुक़्ताए आग़ाज़ बिल्फ़ाज़े दीगर شاہدرہ (शाहदरा) कलमाए तय्यबा है: لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ مُحَمَّدٌ رَسُوْلُ اللّٰهِ और मज़्कूरह बाला आयात में भी यही लफ़्ज़ "इलाह" आया है कि : (أَرَأَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ إِلَٰهَهُ هَوَاهُ) "तो (ऐ नबीصَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ) क्या आपने देखा उस शख़्स को जिसने अपनी ख़्वाहिशे नफ़्स की अपना इलाहा बनाया हुआ है ?" ज़बान से तो कह रहा है لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ जबकि इसका अपना नफ़्स और अपनी ख़्वाहिश इलाह बनी हुई है।

हम एक बहुत बड़े मुग़ालते में मुब्तला हैं हम समझते हैं के इलाह और माबूद बस वही है जिसके आगे हाथ जोड़ कर आदमी खड़ा हो, जिसके सामने सजदा किया जा रहा हो, जिसकी डन्डवत की जाए, कोई चढ़ावा चड़ाया जाए। क़ब्रों पर चढ़ावे चड़ाए जाएं तो हमारी रगे तौहीदी फड़क उठती है कि यह तो शिर्क और कुफ़्र हो रहा है! लेकिन हम अपने नफ़्स के गले में जो हार डालते रहते हैं और अपने वजूद के अन्दर ही अंदर अपने नफ़्स के आगे जो दस्त बस्ता खड़े रहते हैं यह हमें नज़र नहीं आता, सिर्फ़ इसलिए के यह हमारी निगाहों के सामने नहीं है। लेकिन इससे धोका ना खाइए, जैसे वो बुत इलाह और माबूद है जिसको सजदा किया जा रहा है वैसे ही यह नफ़्स भी इलाह और माबूद है जिसकी ख़्वाहिश को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मर्ज़ी पर मक़दम किया जा रहा है। यह नफ़्स भी मुतालबा करता है कि मर्ज़ी मेरी चलेगी, मैं नहीं जानता अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का हुक्म क्या है। बिल्कुल वही अन्दाज़ है जैसे फ़िरओन ने कहा था कि ऐ मूसा! मैं नहीं जानता अपने सिवा तुम्हारे लिए कोई इलाह। यह तुम किसका नाम ले रहे हो ? मैं मालिक हूं मिस्र का, यहां पर मेरा हुक्म चलेगा।

نفسِ ما ہم کم تر از فرعون نیست
لیک اُو را عون ایں را عون نیست

यानी मेरा नफ़्स भी फ़िरओन से कम नहीं है। जो उसने कहा था वही यह नफ़्स कहता रहता है कि मैं नहीं जानता किसी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को, मैं नहीं मानता इसके हलाल और हराम को, मैं नहीं तसलीम करता इसके किसी हुक्म को, बल्कि मर्ज़ी मेरी चलेगी और तुम्हे माननी पड़ेगी, तुम्हे मेरे हुकम के सामने सर झुकाना होगा। बस ज़बान से मैं यह बात इसलिए नहीं कह सकता कि मेरे पास फ़ौज नहीं, लश्कर नहीं, जबकि फ़िरओन के पास लाओ लश्कर था, उसके पास बहुत बड़ा तख़्ते हकूमत था, लिहाज़ा उसने ज़बान से भी कह दिया था: ﴿أَنَا رَبُّكُمُ الْأَعْلَىٰ ﴿٢٤﴾﴾ (النّٰزعٰت) "मैं तुम्हारा रब्बे आला हूं"।

तमाम नक़ली और अक़ली दलाइल से यह बात वाज़ेह तौर पर समझ में आ रही है कि तमाम इताअतें अगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इताअत के ताबअ हो जाएं, कोई इताअत अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इताअत के हम पल्ला न हो, इससे बाला तर न हो तो यह "तौहीद फ़िल इताअत" है। और इसके बरअक्स जहां भी कोई इताअत अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की इताअत के मसावी हो गई, या इससे भी बाला हो गई, तो यह "शिर्क फ़िल इताअत" है।

“शिर्क फ़िल इताअत” की इज्तमाई सूरतें

अब ज़रा इज्तिमाई सतह पर देकिये! इज्तिमाइयते इन्सानिया की बुलन्द तरीन सतह रियासत का तसव्वुर है, और यह तसव्वुर हाल ही में सामने आया है। इससे पहले हमारे हां हकुमत का तसव्वुर था, रियासत का नहीं था। रियासत तो एक फ़र्ज़ी (hypothetical) इदारह थी, एक मजरोसी इसकी हैसियत थी। जबकि हालिया तसव्वुर यह है कि हकुमत और चीज़ है रियासत और चीज़ है, और हकुमत की हैसियत रियासत को चलाने वाली मशीनरी की है। रियासत में सबसे पहली चीज़ जो तय (निर्धारित) होती है वो हाकमियत का उसूल है कि इस रियासत में हाकमियत किसकी तसलीम की जा रही है, आख़िरी इख़्तियार किसके पास है, क़ानून साज़ी का आख़िरी हक़ किसके हाथ में है ? अब इस इज्तमाई सतह पर तौहीद यह है कि ﴿اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ﴾ हुक्म सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى के लिए है”। हाकमियत का इख़्तियार सिवाए अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى के किसी के लिए नहीं। इस नज़रिए की जहां भी नफ़ी होगी वो शिर्क है। आपने हाकमियत किसी और के लिए तसलीम की तो शिर्क हो गया।

अल्लामा इक़बाल का एक शेर है

سروری زیبا فقط اُس ذاتِ بے ہمتا کو ہے
حکمراں ہے اک وہی باقی بتانِ آزری

हक़ाइक़े क़ुरआनी की तर्जुमानी में एक वक़्त में जो मक़ाम व मर्तबा मौलाना रोम का था इस ज़माने में वही मक़ाम व मर्तबा अल्लामा मुहम्मद इक़बा ल का है। अगरचे अल्लामा इक़बाल को मौलाना रोम से कोई शख़्सी निस्बत नहीं है, इसलिये नहीं कि वो ना सिर्फ़ अपने फ़िक्र में बहुत बुलन्द थे, बल्कि अपने अमल में भी बहुत बुलंद थे, जबकि अल्लामा इक़बाल का अमल का पहलू बहुत कमज़ोर है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى उनको माफ़ फ़रमाये, उनकी فروگزاشتوں से दर गुज़र फ़रमाये! लेकिन फ़िक्र के एतबार से वाक़िअतन दोनों में क़तअन कोई फ़र्क़ नहीं है। फ़िक्र की जिस सतह पर मौलाना रोम थे इसी सतह पर इस दौर में अल्लामा इक़बाल हैं। और इन्होंने किस ख़ूबसूरती से हाकमियत के तसव्वुर को बयान किया है! इक़बाल बार बार कहते हैं कि मैं तो शायरी को सिर्फ़ एक ज़रिये के तौर पर इसतेमाल कर रहा हूं।

نغمہ کجا و من کجا سازِ سخن بہانہ ایست
سوئے قطار می کشم ناقۂ بے زمام را

आप देखिए यह कोई शायरी तो नहीं है। शायरी तो गल व बुलबुल की शायरी होती है, का कलो रुख़सार और ज़लफ़े पेचां की शायरी होती है। जबकि यहां शायरी हो रही है :

سروری زیبا فقط اُس ذاتِ بے ہمتا کو ہے
حکمراں ہے اک وہی باقی بتانِ آزری

तो हाकमियते आला के इस उसूल को आप जहां तोड़ देंगे वहां शिर्क हो जाएगा। इन्सानी हाकमियत (human sovereignty) हर हाल में शिर्क है, चाहे वो बादशाहत और मलोकियत (monarchy) हो, चाहे जमहूरयत (democracy) हो और चाहे मज़हबी हकूमत (theocracy) हो। अगर कोई फ़र्दे वाहिद बेठा है कि हाकिम मैं हूं, मेरे हाथ में क़ानून साज़ी का इख़्तियार है, मेरी ज़बान से निकला हुआ लफ़ज़ क़ानून है, तो यह बदतरीन शिर्क है। यह तो ﴿اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ﴾ की नफ़ी हो गई! इस तरह अवामी हाकमियत (popular sovereignty) भी बदतरीन शिर्क है कि जमहूर इख़्तियार के मदई बन कर सामने आ जाएं कि हाकमियत हमारी है। इस दोर का सबसे बड़ा और सबसे आम शिर्क यही है। बुत परसती वाले शिर्क का दौर गुज़र गया है। अब हिन्दुस्तान में भी शायद एक दो फ़ीसद लोग ही हों जो बुतों की डन्डोवत करते हों, अब जो शिर्क हैं वो बिलकुल दूसरे हैं। ज़रूरत इस बात की है कि हर दोर में शिर्क जो भी नया लबादह ओढ़ कर आता है इसके इन्सान समझे। बक़ोले इक़बाल :

हमने ख़ुद शाही को पहनाया है जमहूरी लिबास
जब ज़रा आदम हुआ है ख़ुद शनास व ख़ुदनगर

जब आदमी को ज़रा शऊर हासिल हुआ तो उसने फ़र्दे वाहिद की हकूमत को मानने से इन्कार कर दिया और अवामी हाकमियत को तसलीम कर लिया। हालांके दीनी एतबार से बात वही है, वो भी शिर्क है और यह भी शिर्क है।

इसी तरह मज़हबी हकूमत या पापाइयत (theocracy) का नज़रया भी शिर्क है, जिसमें कोई मज़हबी तबक़ा अपने हाथ में इख़्तियार लेकर बेठ जाता है कि वो जो चाहे क़ानून बना दे। यूरोप में जो पापाइयत का निज़ाम राइज रहा है वो बदतरीन शिर्क है। क़ुरआन मजीम ने इस पर बहुत बड़ी फ़र्दे जुर्म आइद की है कि (اتَّخَذُوا أَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ أَرْبَابًا مِّن دُونِ اللَّهِ)

"उन्होंने अपने उलमा और सूफ़ियों को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के इलावह अपना रब बना लिया है"। (अत्तौबह:31) यानी इनको माबूद बनाए बैठे हैं। हातिम ताई के बेटे हज़रत अदी बिन हातिम رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ इसाइयत से दाएराए इस्लाम में दाख़िल हुए थे, इस आयत के बारे में उन्होंने बड़े अदब से नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ से अर्ज़ किया की कि हुज़ूर صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ! यह बात समझ में नहीं आई, मैं ईसाई रहा हूं और हमने अपने अहबार और रुबहान को ख़ुदा नहीं बनाया। यह एक बहुत बड़ा इश्तबाह था कि क़ुरआन मजीद ईसाइयत पर इतना चार्ज लगा रहा है। इस पर नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़रमाया:

((اَمَا اِنَّهُمْ لَمْ يَكُوْنُوْا يَعْبُدُوْنَهُمْ وَلٰـكِنَّهُمْ كَانُوْا اِذَا اَحَلُّوْا لَـهُمْ شَيْئًا اسْتَحَلُّوْهُ وَاِذَا حَرَّمُوْا عَلَيْهِمْ شَيْئًا حَرَّمُوْهُ))

"क्या ऐसा नहीं है कि वो (ईसाई) इन (अहबार व रुबहान) की बन्दगी तो नहीं करते थे मगर वो इनके लिए जब कोई चीज़ हलाल ठहराते तो वो इसे हलाल समझ बैठते और वो इन पर जब कोई हराम क़रार देते तो वो उसे हराम समझ बैठते थे?"

इसलिए कि शरिअते मूसवी तो ख़्तम हो गई थी, अब क़ानून का हक़ पोप के हाथ में और इसके नुमाइन्दों के हाथ में था कि वो जिस चीज़ को चाहें हलाल ठहरा दें और जिस चीज़ को चाहें हराम ठहरा दें। तो जिसके हाथ में यह इख़्तियार आ गया वही तो ख़ुदा है। लिहाज़ा बादशाहत व मलकोयत, मज़हबी हाकमियत और जमहूरियत तीनों ही शिर्क की शकलें हैं।

आज जमहूरयत और अवाम की हाकमियत का दोर है। और जैसे बादशाह की हाकमियत और मज़हबी राहनुमा या मज़हबी तबक़ा की हाकमियत शिर्क है इसी तरह यह भी इज्तमाई शिर्क है। हां अगर बादशाह ख़ुद भी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के क़ानून का पाबंद हो, और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही के क़ानून को नाफ़ाज़ कर रहा हो तो यह शिर्क नहीं है। हज़राते दाऊ और सुलैमान عَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ यक़ीनन शिर्क करने वाले नहीं थे, जबकि नमरूद और फ़िरओन शिर्क करने वाले थे। इसी तरह मज़हबी तबक़ा अगर अपनी मर्ज़ी से नहीं बल्कि क़ुरआन मजीद (या अपने अपने दौर में तौरात, इंजील, ज़बूर) के मुताबिक़ हुक्म दे रहा हो और इसके हाथ में इन्तज़ामी इख़्तियारात हों तो यह शिर्क नहीं होगा। यह ख़ुदाई हाक्मियत के तसव्वुर के तहत एक हकूमत हो जाएगी कि इख़्तियार-ए-मुतलक अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का है, लेकिन

इन्तेज़ामी अमूर मज़हबी तबक़े के हाथ में हैं। हज़रत तालूत से पहले नबी इस्राईल में जो निज़ाम रहा है वो इसी नौइयत का निज़ाम था। हदीसे मुबारका है कि:

((كَانَتْ بَنُوْ اِسْرَائِيْلَ تَسُوْسُهُمُ الْاَنْبِيَاءُ)) बनीइस्राईल की सियासत इनके अम्बिया करते थे

चुनांचे एक जमहूरियत अगर यह तय कर ले कि असल तशरीअ का हक़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى का है और जो भी पारलिमेंट या कांग्रेस है इसके इख़्तियारात किताब व सुन्नत के दाएरे के अन्दर अंदर महदूद हैं तो वो जमहूरयत अब शिर्क नहीं होगी, लेकिन मुतलिक़ जमहूरियत, मुतलिक़ बादशाहत व मलोकियत, मतलिक़ थियोक्रेसी शिर्क है। तो इब्तदा से लेकर इन्तहा तक उसूल यही है कि मुतलक इताअत सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى का हक़ है, बाक़ी सबकी इताअत मशरूत होगी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى की इताअत से। यह है "तौहीद फ़िल इताअत" और इसको जहां भी मजरूह कर दिया जाएगा वो शिर्क की कोई शकल बन जाएगी, चाहे वो ख़ालिस इन्फ़रादी सतह पर नफ़्स परसती हो या इज्तमाई सतह पर हाकमियते ग़ैरुल्लाह का कोई भी तसव्वुर हो। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى के सिवा किसी और की हाकमियत का तसव्वुर बहर तौर पर शिर्क हो जाएगा।

शिर्क फ़िल मुहब्बत

इबादत में दूसरी लाज़मी चीज़ "मुहब्बत" है। अब देखिए "शिर्क फ़िल मुहब्बत" क्या है और "तौहीद फ़िल मुहब्बत" क्या है। क़ुरआन मजीद में सूरतुल बक़रह का बीसवां रकूअअ इस मोज़ूअ पर क्लाइमक्स है। इर्शादे इलाही है:

(وَمِنَ النَّاسِ مَن يَتَّخِذُ مِن دُونِ اللَّهِ أَندَادًا يُحِبُّونَهُمْ كَحُبِّ اللَّهِ) (अलबक़रह:165)

और लोगों में से कुछ ऐसे हैं जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى के सिवा कुछ हसतियों को (इसके) मदद मुक़ाबिल बना लेते हैं, वो इनसे ऐसी मुहब्बत करते हैं जैसी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى से मुहब्बत होनी चाहिए

यहां "शिर्क फ़िल मुहब्बत" का ज़िक्र भी आ गया है और "तौहीद फ़िल मुहब्बत" का बयान भी हो गया है। यानी अगर कोई हसती या कोई इदारह इतना महबूब हो जाए जितना अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالٰى महबूब है, तो यह "शिर्क फ़िल मुहब्बत" है। इसी तरह मुहब्बत के अन्दर तौहीद क्या है ? फ़रमाया गया ﴿وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ﴾ "और जो लोग वाक़्यतन ईमान वाले हैं

वो सबसे ज़्यादा सख़्त हैं अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत में"। यानी इनकी सारी मुहब्बतों पर ग़ालिब मुहब्बत अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की है। हज़रत इब्राहीमعَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ का अस्ल इम्तिहान ही मुहब्बत का इम्तिहान था और हज़रत इब्राहीमعَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ सारे इम्तिहनात में पास हो गए थे। वालिदैन की मुहब्बत को उन्होंने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत पर क़ुर्बान कर दिया और तौहीद की ख़ातिर वालदैन के घर को छोड़ दिया। अपनी क़ौम की मुहब्बत को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत पर क़ुर्बान कर दिया। वतन को छोड़ कर वतन की मुहब्बत को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत पर क़ुर्बान कर दिया। जैसे उन्होंने फ़रमाया था:

﴿إِنِّي ذَاهِبٌ إِلَىٰ رَبِّي سَيَهْدِينِ ﴿٩٩﴾﴾ (अस्सफ़्फ़ात)

यक़ीनन मैं तो अब अपने रब की तरफ़ जा रहा हूं, अन्क़रीब वो मुझे राहयाब कर देगा"।

अब हज़रत इब्राहीमعَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ की आख़िरी आज़माइश बेटे की मुहब्बत की थी। और बेटा भी एकलौता, जो सत्तासी बरस की उम्र में दुआएं मांग मांग कर मिला, और इन्तिहाई حليم الطبع हलीमुलतबेअ बेटा, जिसके रूएं रूएं से सआदत मंदी और नैकी फूट रही थी। ज़रा अन्दाज़ा कीजिए हज़रत इब्राहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ के दिल में उसके लिए कितनी मुहब्बत होगी ! अब अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने हज़रत इब्राहीमعَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ का आख़िरी इम्तिहान लिया कि बेटे की मुहब्बत कहीं हमारी मुहब्बत से बालातर तो नहीं हो गई ? इब्राहीम ! इसे भी अगर तुम्हारे लिए, हमारे हुक्म के तहत ज़बह कर सकते हो तब तो वाक़्यतन तुम मुवहहद फ़िल मुहब्बत हो गए, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत में तौहीद का मक़ाम तुमने हासिल कर लिया, और अगर यहां नाकाम हो गए तो जान लो कि तौहीद के इम्तेहान में नाकाम हो गए। फिर तो मालूम हुआ कि एक मुहब्बत अभी ऐसी है जो दिल के सिंघासन पर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत के बराबर बैठी है या इससे भी बालातर हो गई है। यह आख़िरी इम्तेहान था मुहब्बत का, जिसमें हज़रत इब्राहीम عَلَيۡهِ ٱلسَّلَامُ सुरख़ुरू हो गए। और यह है "तौहीद फ़िल मुहब्बत।" "शिर्क फ़िल मुहब्बत" की दलील के लिये भी दो आयात पैश की जा रही हैं। एक तो वो आयत (अल बक़रह:165) जिसका हमने अभी मुताअला किया:

(وَمِنَ النَّاسِ مَن يَتَّخِذُ مِن دُونِ اللَّهِ أَندَادًا يُحِبُّونَهُمْ كَحُبِّ اللَّهِ)

और लोगों में कुछ वो भी हैं जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सिवा कुछ हसतिओं को मद्दे मुक़ाबिल बना कर उससे ऐसी मुहब्बत करते हैं जैसी कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से मुहब्बत करनी चाहिए"।

दूसरी सुरह तौबा आयत 24 । फ़रमाया गया:

قُلْ إِن كَانَ آبَاؤُكُمْ وَأَبْنَاؤُكُمْ وَإِخْوَانُكُمْ وَأَزْوَاجُكُمْ وَعَشِيرَتُكُمْ وَأَمْوَالٌ اقْتَرَفْتُمُوهَا وَتِجَارَةٌ تَخْشَوْنَ كَسَادَهَا وَمَسَاكِنُ تَرْضَوْنَهَا أَحَبَّ إِلَيْكُم مِّنَ اللَّهِ وَرَسُولِهِ وَجِهَادٍ فِي سَبِيلِهِ فَتَرَبَّصُوا حَتَّىٰ يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْفَاسِقِينَ ﴿24﴾

(ऐ नबी ﷺ इनसे) कह दीजिए कि अगर तुम्हे अपने बाप, अपने बेटे, अपने भाई, अपनी बीवियां, अपने रिश्तेदार और अपने वो माल जो तुमने बड़ी मेहनत से जमा किये हैं और अपने वो कारोबार जिनकी कसाद बाज़ारी का तुम्हे ख़ोफ़ रहता है और अपने वो मकानात जो तुम्हे पसन्द हैं (जिन्हें तुमने बहुत शोक़ और अरमानों से बनाया है) ज़्यादा महबूब हैं और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से और इसके रसूल से और इसकी राह में जिहाद करने से तो जाओ इन्तिज़ार करो (दफ़अ हो जाओ) यहां तक के अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ अपना फ़ैसला सामने लेकर आए। और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ऐसे फ़ासिक़ों को हिदायत नहीं देता।"

इसलिए कि यह मुशरिक हैं, यह "शिर्क फ़िल मुहब्बत" के अन्दर मुब्तला हैं। इन्हें यह आठ चीज़ें अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से और इसके रसूल से और अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की राह में जिहाद करने से ज़्यादा महबूब हैं।

अब ज़रा इस उसूल को अलजबरा के फ़ार्मूले की तरह अमली ज़िंदगी में apply कीजिए! क़ुरआन मजीद में सुरह निसा कि आयत 135 में फ़रमाया गया:

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا كُونُوا قَوَّامِينَ بِالْقِسْطِ شُهَدَاءَ لِلَّهِ وَلَوْ عَلَىٰ أَنفُسِكُمْ أَوِ الْوَالِدَيْنِ وَالْأَقْرَبِينَ

"ऐ अहले ईमान! इंसाफ़ के अलम्बर्दार और ख़ुदा वास्ते के गवाह बनों अगरचे वो (इंसाफ़ की बात और गवाही) तुम्हारे अपने ख़िलाफ़ या वालिदैन और रिश्तेदारों के ख़िलाफ़ जाती हो"।

आप अपने गिरोही और फ़िर्क़ावाराना तसव्वुरात लिए बैठे हैं, इन पर ज़रा सी आंच आती है तो आप तिलमिला उठते हैं। अगर आपके बारे में यह कहा जाए कि शिर्क से बचे हुए आप भी नहीं तो बहर हाल ग़ुस्सा तो आएगा। लेकिन ज़रा ग़ौर कीजिए और हक़ीक़त को समझिए, दूसरों पर शिर्क के फ़त्वे जड़ देना आसान है, दूसरे की आंख के अन्दर तिनका भी

नज़र आ जाता है लेकिन अपनी आंख का शहतीर नज़र नहीं आता। क़ुरआन मजीद में समझिए कि "शिर्क फ़िल महुब्बत" क्या है।

माल से इन्सान को बहुत मुहुब्बत है। नबी-ए-अकरम ﷺ की एक हदीसे मुबारका है। इसे आप ﷺ की बद दुआ भी कहा जा सकता है और ख़बरया कलाम भी क़रार दिया जा सकता है। आप ﷺ ने फ़रमाया

((تَعِسَ عَبْدُ الدِّينَارِ وَعَبْدُ الدِّرْهَمِ)) "हलाक हो जाए (या हलाक हुआ) दिरहम व दीनार का बन्दा।"

देखिए नबी-ए-अकरम ﷺ ने यहां "अब्द" का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है, जैसे सूरतुल फ़ुर्क़ान की आयत 43 और अल जासियह की आयत 23 में "इलाह" का लफ़्ज़ लाया गया है, ताकि कोई अशकाल और अशतबाह बाक़ी ना रहे, इधर उधर से बच निकलने का कोई मौक़ा ना रहे। जिसे माल बहुत महबूब है उसे आप ﷺ ने उसको عبدالدرہم، और عبدالدینار कहा है। इसलिए कि वो चाहता है कि बस माल आना चाहिए, चाहे हलाल से आए या हराम से आए। अब अगर आपके दिल में माल की मुहब्बत है वही माबूद है। अब आपके माबूद दो हो गए। आप अल्लाह تبارك وتعالى के लिए भी सज्दे करते हैं और माल भी आपका माबूद है, अगरचे आप लक्ष्मी देवी को नहीं पूजते, ख़ुद इसके पुजारी भी उस लक्ष्मी को नहीं पूजते, बल्कि दौलत को पूजते हैं, लक्ष्मी तो दर हक़ीक़त उनके हां एक अलामत है, पुजारी तो असल में वो दौलत के हैं। इसी तरह हमने भी अगरचे लक्ष्मी को देवी क़रार देकर इसकी मूरती नहीं बनाई लेकिन इसकी पूजा का जो असल मक़सूद है वो तो हम कर रहे हैं। लिहाज़ा नबी-ए-अकरम ﷺ ने फ़रमाया: "हलाक हो गया (या हलाक हो जाए) दिरहम और दीनार का बंदा"। अब चाहे इसने अपना नाम अब्दुल्लाह या अब्दुर्रहमान रखा हो या लेकिन इसकी असल और माअनवी शख़सियत عبدالدینار और عبدالدرہم، की है। यह ख़ालिस इन्फ़रादी सतह की बात है और मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ यह बात फरमा रहे हैं।

इज्तमाई सतह पर "शिर्क फ़िल मुहब्बत" की सूरत

इज्तमाई सहत पर देखिए के "तौहीद फ़िल मुहब्बत" क्या है और "शिर्क फ़िल मुहब्बत" क्या है। इस दोर के जो इज्तमाई तसव्वुरात हैं इनमें एक तसव्वुर वतन की बुनियाद पर क़ौम परसती (nationalism) का है। पिछले ज़माने की क़ौम परसती अकसर व बेशतर नसल की बुनियाद पर होती थी और जो तसादम होता था वो भी नसली बुनियाद पर होता था,

जबकि उन्नीसवीं और बीसवीं सदी का जो सबसे बड़ा सियासी तसव्वुर यूरोप ने दिया है वो वतनी क़ौम परसती का तसव्वुर है कि एक वतन के अन्दर रहने वाले सब एक क़ौम हैं और मज़हब हर एक ज़ाती मस्अला है, चाहे कोई हिन्दु हो, सिख हो, पारसी हो, ईसाई हो, इससे हकुमत को बहस नहीं है। रियासत सेकूलर है, रियासत का मज़हब से कोई ताल्लुक़ नहीं। हां जो भी इस हद्द के अन्दर रहने वाले हैं इनको क़ौमियत (nationality) मिल जाएगी कि वे इस वतन के रहने वाले हैं और इस रियासत के शहरी हैं। अब ज़ाहिर बात है कि हर इज्तमाइयत को लाज़िमन कोई चीज़ ऐसी चाहिए जो मर्कज़े मुहब्बत बन जाए। इसलिए के अगर किसी चीज़ के साथ जज़बाती लगाओ नहीं होगा तो इसके साथ कैसे जुड़ेंगे, कैसे बन्याने मरसोस बनेंगे, ख़तरात का मुक़ाबला कैसे करेंगे? लिहाज़ा इस दोर में जो असल माबूद तराशा गया है वो वतन है। वतन की मुहब्बत और अज़मत के गुन गाए जाते हैं, वतन आन पर कट मरने का दरस दिया जाता है, वतन का नअरा लगाया जाता है। वतन के झन्डे के सामने बा अदब खड़े होकर इसे सलामी दी जाती है। वतन का एक तरानाए हमद भी होता है जिसको क़ौमी तराना कहा जाता है। यह मज़हब वतनियत है जिसके यह मरासमे अबूदियत हैं। यह दौर का नया शिर्क है और इसको हमारे उलमा में से कोई नहीं समझ पाया। मैं अल्लामा इक़बाल की अज़्मते फ़िक्र का इसी लिए क़ायल हूं कि इस हक़ीक़त को समझने वाले इस दौर में सिर्फ़ अल्लामा इक़बाल थे। जिस तरह उन्होंने हाकमियते आला के नज़रयह को वाज़ेह किया है ।

इसी तरह उन्होंने “वतनियत” के बुत पर कारी ज़रब लगाई है। मुलाख़ता हो:

इस दौर में मह और है, जाम और है, जम और
साक़ी ने बिना की रोशे लुतफ़ व सितम और
मुस्लिम ने भी तामीर किया अपना हरम और
तहज़ीब के आज़र ने तरशवाए सनम और
इन ताज़ा ख़ुदाओं में बड़ा सबसे वतन है
जो पैरहन इसका है वो मज़हब का कफ़न है

इक़बाल के जज़्बे और अहसास की शिद्दत का आलम देखिए ! इसलिए कि उनका मुशाहिदा बहुत गहरा था, उन्होंने समझ लिया था कि कितना पानी दरिया-ए-रावी के पुल के नीचे से गुज़र रहा है। अब लात, मनात, अज़ा और हबल की पूजा का ज़माना गुज़र चुका है, इन बुतों के पुजारी आज नहीं मिलेंगे, आज पूजा किसी और शै की हो रही है, और इस जगह पर सबसे बड़ा बुत वतन है। अब हमारे हां भी यह सब कुछ हो रहा है। इसलिए कि हमने इन चीज़ों की हक़ीक़त पर ग़ौर नहीं किया। यह झन्डे की सलामी। इसका क्या अर्थ है ? यह दरअसल वतन के मरासिम-ए-अबूदियत में से है कि जब क़ौमी तराना गाया जा रहा हो तो आप झंडे के सामने साकत व सामत खड़े हो जाएं। यह गोया वतन की नमाज़ है जो पढ़ी जा रही है और हमने इसे समझा नहीं है। हर मज़हब में अपने माबूद के साथ मुहब्बत के इज़हार और उसकी अज़मत के इक़रार के लिए इसके झन्डे को आजिज़ी के साथ सलामी दी जाती है। यह मज़हबे वतनियत जो यूरप का इजाद करदा था, इसकी तमाम मज़हबी रसूमात (rituals) को हमने जूं का तूं क़बूल कर लिया है। यह उस मज़हब की रसूमात हैं जिसका माबूद वतन है। इसके बारे में इक़बाल ने मज़ीद कहा:

यह बुत के तराशीदहे तहज़ीब नवी है
ग़ारत गरे काशानाए दीने नबवी है
बाज़ू तेरा तौहीद की क़ुव्वत से क़वी है
इस्लाम तेरा देस है तू मुस्तफ़ावी है
नज़ारहे देरेना ज़माने को दिखा दे!
ऐ मुस्तफ़ावी ख़ाक में इस बुत को मिला दे!

वतन इस बुत को ख़ाक में मिला देना अल्लामा इक़बाल का पैग़ाम है। देखिए वतन आपका माबूद कैसे हुआ? इसलिए कि आपकी मुहब्बत का मर्कज़ वतन बन गया है। अब आपके नज़दीक जो शै वतन के ले अच्छी है वो अच्छी है, चाहे फ़ी नफ़्सिही वो जाइज़ हो या नाजाइज़ हो। वतन के लिए आपको दूसरों पर ज़ुल्म करना पड़ रहा है तो आप कर रहे हैं। अपने वतन की जय बोली जा रही है। कभी आला हबल के नारे लगा करते थे, लेकिन अब वतन के नारे हैं। इस ज़मीन ने दर हक़ीक़त आज देवता की शकल इख़्तियार कर ली है और इसकी बुनियाद में क़ौमियत का तसव्वुर है जो आज के इज्तमाई तसव्वुरात में अहम तरीन तसव्वुर है।

बहर हाल “तौहीद फ़िल मुहब्बत” यह है कि मुहब्बत का अस्ल मर्कज़ ज़ाते बारी تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ हो, तमाम मुहब्बतें इसके ताबअ हो जाएं-और “शिर्क फ़िल मुहब्बत” यह है कि किसी शख़्स या किसी इदारे या किसी शै की मुहब्बत अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत के हम पल्ला हो जाए या इससे बाला तर हो जाए।

चंद ज़रूरी बातें

"हक़ीक़त व इक़्सामे शिर्क" के इस मुफ़स्सिल सिलसिलाए गुफ़्तगू के तहत गुज़िश्ता नशस्त में हमने शिर्क की मुअय्यिन करदा अक़्साम में तीसरी और आख़िरी क़िस्म "शिर्क फ़िल हुक़ूक़" या बिल्फ़ाज़े दीगर "शिर्क फ़िल इबादत" पर गुफ़्तगू की थी और "इबादत" के दो अज्ज़ाए तर्कीबी " इताअत" और "मुहब्बत" के हवाले से मैंने उसूली और बुनियादी बातें बयान की दी थीं। इस ज़िमन में इन्फ़रादियत से लेकर इज्तमाइयत की बुलंद तरीन चोटी यानी "रियासत" की अलग अलग मिसालें बयान करने के बाद अर्ज़ किया गया था कि इन्ही पर क़यास करते हुए दरमियानी ख़लाअ को आप ख़ुद पुर कर लीजिए। लेकिन हाज़रीन की जानिब से बाज़ सवालात की बिना पर मेरे ज़हन में यह ख़्याल आया कि इस मोज़ूअ पर बाज़ बातों की मज़ीद वज़ाहत ज़रूरी और सोद मन्द है।

क्या तक़्लीद शिर्क है?

इताअत के ज़िमन में यह बात बयान हो चुकी है कि क़ुरआन मजीद ने अहले किताब यानी यहूद व नसारा पर यह इलज़ाम आइद किया है कि ٱتَّخَذُوٓا۟ أَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَـٰنَهُمْ أَرْبَابًا مِّن دُونِ ٱللَّهِ (अत्तौबा:31) और इस ज़िमन में हज़रत अदी बिन हातिम رَضِيَ ٱللَّٰهُ عَنْهُ के सवाल के जवाब में रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने इसके जो तशरीह फ़रमायी थी वो भी बयान की जा चुकी है। अब इसी को सामने रख कर हमारे हां जो तक़्लीद का एक तसव्वुर है इसको समझ लीजिए !

देखिए तक़्लीद का एक तसव्वुर है "अवाम" के नज़दीक और एक तसव्वुर है "अहले इल्म" के नज़दीक। इन दोनों में ज़मीन व आसमान का फ़र्क़ है। अवाम के ज़हनों में तक़्लीद का जो तसव्वुर है वो बिलअमूल शिर्क है। अगर किसी के ज़हन में यह बात है कि जो बात इमाम अबूहनीफ़ा رَحْمَةُ ٱللَّٰهِ कह दें वो हम लाज़िमन मानेंगे, बग़ैर कोई दलील तलब किये कि वो किस बुनियाद पर यह बात कह रहें हैं और किताब व सुन्नत की कौ न सी दलील उनके पास है, तो यह शिर्क है। इसी तरह अगर कोई बात मजरद इसलिए मान ली जाए के यह इमाम अहमद बिन हन्बल رَحْمَةُ ٱللَّٰهِ या इमाम शाफ़ई رَحْمَةُ ٱللَّٰهِ या इमाम मालिक رَحْمَةُ ٱللَّٰهِ की ज़बाने मुबारक से निकली हुई बात है तो यह बिला शक व शुबा शिर्क है। अल्बत्ता हमारे हां अहले इल्म के नज़दीक तलक़ीद का तसव्वुर यह है कि जिन अज़ीम और बाहिम्मत लोगों ने किताब व सुन्नत का फ़हम करने के लिए अपनी पूरी पूरी ज़िंदगियां खपाई हैं उनके फ़हम पर एतमाद

करते हुए, उन्होंने किताब व सुन्नत से इस्तनाब करके जो दलाइल पेश किये हैं इनको मद्दे नज़र रख कर उनकी राए पर अमल किया जाए। इस ज़िमन में इमाम अबू हनीफ़ा رَحِمَهُ اللَّهِ का यह क़ौल मौजूद है कि “अगर तुम्हे मेरे किसी क़ौल के ख़िलाफ़ सहीह हदीसे नबवी صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ मिल जाए तो मेरी बात को दीवार पर मारो।” इसलिए कि किसी बात में बज़न इस वजह से हरगिज़ नहीं है के यह फ़लां शख़्स की बात है, बल्कि इस वजह से है कि उसने किताब व सुन्नत से अपनी बात को मदलल किया है और किताब व सुन्नत के मन्शाअ को समझ कर इससे इस्तनाब किया है।

यही वजह है के हमारे हां इमामे आज़म अबू हनीफ़ा رَحِمَهُ اللَّهِ के अव्वलीन शागिर्दों क़ाज़ी अबू यूसूफ رَحِمَهُ اللَّهِ और इमाम मुहम्मद رَحِمَهُ اللَّهِ ने अपने उस्ताद इमाम अबू हनीफ़ा رَحِمَهُ اللَّهِ से इख़्तिलाफ़ किया है और आज दुन्या में जो फ़िक़ा हन्फ़ी मौजूद है वो अकस र व बैशतर इमाम अबू हनीफ़ा رَحِمَهُ اللَّهِ की राए पर नहीं बल्कि साहबीन यानी क़ाज़ी अबू यूसुफ़ رَحِمَهُ اللَّهِ और इमाम मुहम्मद رَحِمَهُ اللَّهِ की राए पर है। मिसाल के तौर पर इमाम अबू हनीफ़ رَحِمَهُ اللَّهِ के नज़दीक “मज़ारअत” मुत्लक़न हराम है, लेकिन फ़िक़ा हन्फ़ी में इस पर जो फ़तवा है वो इमाम अबू हनीफ़ा رَحِمَهُ اللَّهِ की राए पर नहीं है बल्कि साहबीन की राए पर है। तो उनके शागिर्दों ने उनसे इख़्तिलाफ़ किया है। हमारे हां जब तक तक़लीद के मामले में यही तरज़े अमल रहा तो एक सेहतमन्द फ़िज़ा रही। इसके बाद एक दो र आया के उलमा ने इस ख़ते को पेश नज़र रखते हुए कि अब इल्म की कमी हो गई है, हिर्स व हवा का ज़ोर हो गया है जिसकी वजह से इज्तहाद में ख़तरात ज़्यादा हैं, यह कहा के अब नए इज्तहादों की बजाए उल्माए सलफ़ के इज्तहाद पर ही अमल किया जाए। तो यह एक अहतयात है जो इस दौर में उलमा ने इख़्तियार की है। लेकिन इसमें भी अहले इल्म के नज़दीक कोई शख़्स अपनी ज़ात में मुताअ हर गिज़ नहीं है, बल्कि किताब वो सुन्नत की बुन्याद पर ही इसकी बात मानी जाएगी। चुनांचे यह तक़्लीद शिर्क नहीं है। अल्बत्ता अगर किसी शख़्स को अपनी ज़ात में मुताअ मान लिया जाए तो इस क़िस्म की तक़लीद शिर्क है और यह उसी क़िसम का शिर्क है जैसे के क़ुरआन मजीद ने अहले किताब के बारे में कहा है कि

اتَّخَذُوا أَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ أَرْبَابًا مِّن دُونِ اللَّهِ

उन्होंने (यानी यहूद व नसारा ने) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को छोड़ कर अपने उलमा और सूफ़ियों को रब बना लिया"। (अत्तौबह:31)

इसलिए कि दो ही तबक़े मज़हबी होते हैं, उलमा और सूफ़िया। हमारे हां भी तसव्वुफ़ के मैदान में यह गुमराह कुन तसव्वुर मौजूद है कि मुरशिद को अपनी ज़ात में मुताअ मान लिया गया है। इस मैदान में शायरी के ज़रियह बहुत फ़ुतूर और गुमराही फैली है और इस तरह की बातें ज़बान ज़दे अवाम व ख़वास हो गई हैं कि "बा मे सजादा रन्गीन कन गरत पीरे मग़ां को यद!" यानी "अगर तुम्हारा मुरशिद तुमसे कहे कि तुम अपनी जानमाज़ को शराब से रंगीन कर दो तो कर दिया करो"। इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन। यह तसव्वुर ख़ालिस शर्क है। कोई चाहे मुरशिद हो, आलिम हो, हाकिम हो, मुज्तहिद हो, किसी की बात भी अगर मानी जाएगी तो किताब व सुन्नत के दाएरे के अंदर मानी जाएगी और कुरआन व हदीस की दलील से मानी जाएगी। अगर तर्ज़े अमल यही है तो तौहीद है। और अगर इसको कहीं से भी और किसी पहलू से भी मजरूह कर दिया जाए तो यह शिर्क है।

मुहब्बत और परस्तिश में फ़र्क़

अब आये "मुहब्बत" के मामले में जो अमली पहलू हैं उन पर ग़ौर कर लिया जाए। जान लीजिए के "मुहब्बत" और चीज़ है और "परस्तिश" और चीज़ है।[1] चुनांचे वतन की मुहब्बत और चीज़ है और वतन परस्ती और चीज़ है। वतन से मुहब्बत अपनी जगह एक मतलूब और क़ाबिले जज़्बा है। जिसे वतन से मुहब्बत ना हो वो शख़्स बड़ा बे ग़ैरत है। जिसे वालदैन से मुहब्बत ना हो तो वो शख़्स बड़ा बे हमयत है। अपने क़बीले और क़ौम से मुहब्बत ना हो तो ऐसा शख़्स बेग़ैरत और बेहमयत है। अब अगर यह तमाम मुहब्बतें अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत के ताबअ रहें और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत इन सबके ऊपर हो तो यह "तौहीद फ़िल मुहब्बत" है। इसके बरअक्स अगर एक मुहब्बत अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत से बाला तर हो जाए या बराबर भी हो जाए तो वो "शिर्क फ़िल मुहब्बत" है।

इसी तरह से एक और परस्तिश है "शख़्सियत परस्ती"। यह भी कम दर्जे का शिर्क नहीं है। अगर किसी शख़्स की मुहब्बत और अक़ीदत आप को अन्धा और बहरा कर दे और इसकी हर बात आपके लिए सनद हो, इसकी रज़ा जोई ही आप के पेशे नज़र रहे तो यह शख़्सियत परस्ती है और यह यक़ीनन शिर्क है। यही बात नबी-ए-अकरम ﷺ ने

---

[1] मासिवा अल्लाह के लिए लफ़्ज़ "इबादत" के बजाए लफ़्ज़ "परस्तिश" इस्तेमाल होता है और मैं समझता हूं के ये एक तरह की दयानत है।

फ़रमायी कि ((حُبُّكَ الشَّيْءَ يُعْمِي وَيُصِمُّ)) "तेरा किसी शैए से मुहब्बत करना तुझे अंधा और बहरा बना देता है"। यही मुहब्बत आज शख़्सियत परस्ती की शकल में दुनिया में राइज है। और क़ाबिले ग़ौर बात है कि इसको बाक़ाइदह एक सियासी तसव्वुर (political concept) की हैसियत से दुनिया में develop किया गया है। गांधी जी के अस्सी अस्सी गज़ ऊंचे मुजसमे कोई मशग़ले (hobby) के तौर पर नहीं तराशे गए थे, बल्कि इस वजह से तराशे गए थे कि इस शख़्स की अज़मत लोगों के ज़हनों में नक़श हो जाए और उससे मुहब्बत और अक़ीदत रखने वाले सब एक दूसरे से जुड़े रहें, जिस तरह के वतन की मुहब्बत अहले वतन को मुसतहकिम करने और एक दूसरे के साथ जोड़ने वाली शैए (unifying force) है। यह शख़्सियत परस्ती दुनिया में पहले होती रही है और अब भी होती है। इसको hero worship का ख़ूबसूरत नाम दिया गया है। हमारे हां मुस्लिम लीग के ज़अमाअ में से एक साहब का हाल था के वो कभी नमाज़ के क़रीब तो फटकते नहीं थे, लेकिन उनका अपना कहना यह था के "मैं तो सुबह ही क़ाइदे आज़म की तस्वीर को सलाम करता हूं और बस यही मेरी नमाज़ है"। अब यह शख़्सियत परस्ती (hero worship) नहीं तो और क्या है? अगर कोई ग़ैर यह बात करे तो हम कहते हैं वो बुतपरसत है और हम ऐसी बात करके भी समझते हैं कि हम तो मवाहिद-ए-कामिल हैं और इससे हमारी तौहीद में कोई नुस्ख पैदा नहीं हुआ। ऐसे ही सटालिन के मुजसमे नसब किये गए और इसकी तसवीरें बच्चों के ज़हनों के अन्दर उतारी गईं, ताकि इसकी मुहब्बत और अक़ीदत ज़हनों पर छा जाए। इसी तरह माओ तुंग (ماوزے تنگ MaoTse tung) के बुत तराशे गए। तो यह सब इंसान परसती और शख़्सियत परस्ती है। और यह ख़त्म नही हुई, आज भी इसका वजूद बाक़ी है।

आज के ज़माने में एक और मुहब्बत "नज़रिए की मुहब्बत" है। अगर किसी तसव्वुर या नज़रिए की मुहब्बत, चाहे वो इश्तराकियत (समाजवाद) का नज़रिया हो या कोई और इन्क़लाबी (क्रन्तिकारी) नज़रया हो, इन्सान के ज़हन पर इस तरह ग़ालिब और मुसल्लत हो जाए कि उसका जीना और मरना अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के बजाए उस नज़रिए के लिये हो जाए, तो, معاذ الله, यह उस नज़रिए की परस्तिश है। गोया एक नज़रियह और एक निज़ाम को पूजा जा रहा है। किसी ने बड़ा प्यारा शेर कहा है:

एक तसव्वुर के हुस्ने मब्हम पर सारी हस्ती लुटाइ जाती है

ज़िंदगी तर्के आरज़ू के बाद कैसे सांसों में ढाली जाती है!

इन्सान के अन्दर जब तक कोई आरज़ू ना हो, कोई आदर्श ना हो, कोई नस्बुल ऐन ना हो तो जीने का मज़ा ही क्या है! फिर तो वो इंसान नहीं बल्कि हेवान है, उसकी ज़िंदगी महज़ सांसों में ढाली हुई ज़िंदगी है, वो महज़ human vegetable है। लेकिन नस्बुल ऐन सिर्फ एक ही सहीह है , और वह है 'अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ कि मुहब्बत' का नस्बुल ऐन। कोई और नस्बुल ऐन इस जगह पर आकर मन्तबक़ हो गया तो यही तो शिर्क है।

وَمِنَ النَّاسِ مَن يَتَّخِذُ مِن دُونِ اللَّهِ أَندَادًا يُحِبُّونَهُمْ كَحُبِّ اللَّهِ ۖ وَالَّذِينَ آمَنُوا أَشَدُّ حُبًّا لِّلَّهِ

"और लोगों में से कुछ ऐसे भी हैं जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सिवा कुछ हसतियों को (उसके) मदद मुक़ाबिल बना लेते हैं, वो उससे ऐसी मुहब्बत करते हैं जैसी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ से मुहब्बत होनी चाहिए। और जो लोग वाक़्यतन ईमान वाले हैं वो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत में सबसे ज़यादा सख़्त हैं"। (अल बक़रह:165)

मैं यह बात अर्ज़ कर चुका हूं के "वतनियत का नज़रया" इस दोर के बहुत बड़े शिर्क की हैसियत से उभर कर सामने आया है, लेकिन हमारे कोई भी आलिमे दीन इसको नहीं समझ सका। इसका सबब यह है कि हमारा उलमा ने बद क़िसमती से मग़रिब के फ़लसफ़े का मुताला नहीं किया। यह अपने तसव्वुरात के पेशे नज़र यह समझ रहे कि वतनियत (nationalism) शायद हुब्बुल वतनी है! लेकिन इस दौर में अल्लामा इक़बाल ने इसको ख़ूब समझा है। इनका बड़ा प्यारा शेर है:

مری نوائے پریشاں کو شاعری نہ سمجھ
کہ میں اِس آگ میں ڈالا گیا ہوں مثلِ خلیل!

यानी मैं जदीद तहज़ीब व तमद्दन और जदीद इमरानी नज़रयात की आग में डाला गया हूं, जैसे इब्राहीमعَلَيْهِ السَّلَامُ को आग में डाला गया था। मैं जानता हूं के मग़रिब के इन नज़रयात और फ़लसफ़े के पस परदा किया कुछ है जो इस इज्तमाई ज़िंदगी बुन्याद बने हैं , और मुसलमान उम्मत को इससे आगाह करना और इनका रद्द करना मेरा इम्तेहान है। अल्लामा इक़बाल को इस चीज़ का बराहे रास्त मुशाहिदा था, जबकि हमारे उलमा इसको नहीं समझ सके। यह किताब व सुन्नत के इल्म से ख़ूब वाक़िफ़ हैं। मैं कहा करता हूं कि इल्मे दीन के एतबार से हमारे उलमा की शख़्सियतें मन्गला डेम और तरबीला डेम जैसी हैं , लेकिन जब तक यह इल्म इस दोर की ज़मीन तक ना पहुंचे तो वो डेम में खड़े उस पानी

की मानिन्द है जो तब ही फ़ाइदह मन्द होता है जब वो ज़मीन तक पहुंचे। इसका अहम काम के लिए तक़सीम के ज़राए (distribution channels) दरकार हैं जो इस इल्म को आगे पहुंचाएं। लेकिन बद क़िसमती से वो चेनलज़ आज नहीं रहे। राब्ते का एक ख़लाअ (gap of communication) बीच में हाइल है कि बात आगे पहुंच नही पा रही। लिहाज़ा ज़रूरत इस बात की है कि इस दोर के नज़रयात को समझा जाए। इसलिए कि इस दोर का शिर्क तब ही समझ में आएगा जब गहराई में उतर कर इस दोर के नज़रियात को समझा जाए। यह बात अगरचे छोटी और ग़ैर अहम महसूस होती है लेकिन बाज़ बज़ाहिर छोटी बातें तिल के ऊंट में पहाड़ की मानिन्द होती हैं।

एक साहब ने झन्डे की अज़मत और इसके विक़ार को बचाने की बात की है। यह बात अपनी हद ते दुरुस्त बल्कि ज़रूरी है, लेकिन झन्डे को देख कर खड़े हो जाना, इसे सलामी देना, यह साबित कीजिए मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ से ! यह तो क़ुनूत लिल अलम है कि आप झंडे के आगे हाथ बान्ध कर बा अदब खड़े हो जाएं। यह मेरे नज़दीक शिर्क है , वर्ना झंडे के अज़मत और वक़ार को बचाना अपनी जगह मसल्लम है। जैसे हज़रत मअसब बिन उमैर رَضِيَٱللَّهُعَنْهُ ने ग़ज़वए उहद में अपनी जान की क़ुर्बानी दे दी लेकिन झन्डे को नहीं गिरने दिया। ऐसे ही हज़रत ज़ैद बन हारिस और हज़रत जाअफ़र तयार رَضِيَٱللَّهُعَنْهُ ने किया। लेकिन झंडे को सलामी देना और इसके लिए ख़शूअ व ख़ज़ूअ के साथ खड़े हो जाना क़तअन जाइज़ नहीं है। हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ ने तो अपने लिए खड़ा होने से सहाबाए कराम رَضِيَٱللَّهُعَنْهُ को मना फरमा दिया था। हज़रत अबू उमामा رَضِيَٱللَّهُعَنْهُ से रिवायत है कि नबी-ए-अकरम ﷺ के तशरीफ़ लाने पर आप ﷺ के लिए एहतरामन खड़े हो गए तो आप ﷺ ने फ़रमाया: ((لَا تَقُومُوا كَمَا تَقُومُ الْأَعَاجِمُ يُعَظِّمُ بَعْضُهَا بَعْضًا)) "तुम लोग (मेरे तशरीफ़ लाने पर) खड़े ना हो जाया कर जैसे के अजमी लोग एक दूसरे की तअज़ीम के लिए खड़े हो जाते हैं।"

तो "हुब्बुल वतनी" और चीज़ है और "वतन परसती" और चीज़ है। इन दोनों चीज़ों में जब तक फ़र्क़ नहीं करेंगे और इनको अलैहदा अलैहदा अपने अपने मक़ाम पर नहीं रखेंगे तो ज़हनों में लाज़िमन अशकाल पैदा हो जाएंगे।

"मरासिमे उबूदियत" सिर्फ़ अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए हैं

इबादत का तीसरा जुज़्व है “मरासिमे उबूदियत”। रकूअअ करना, सज्दा करना, किसी के लिए मोअद्दब होकर खड़े होना, नज़र पेश करना और नज़र मानना यह सब मरासिमे अबूदियत हैं और सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के लिए रवा हैं। अगर कोई ग़ैरुल्लाह के लिए मरासिमे अबूदियत अन्जाम देता है तो यक़ीनन ग़लती पर है और इसका यह अमल शिर्क है, चाहे उसकी नियत शर्क की ना हो। इसलिए कि उसके इस अमल से नामालूम कितने लोग गुमराह हो जाएं। महुम्मद रसूलुल्लाह صَلَّىٱللَّهُعَلَيۡهِوَسَلَّمَ पर जब दीन की तकमील हुई तो सज्दाहे ताज़ीमी भी हराम क़रार दे दिया गया, हालांके इससे पहले सजदाहे ताज़ीमी जाइज़ था। किसी के अदब और ताज़ीम के लिए उससे झुक कर मिलना इन्सान की फ़ितरत और जबलत में है। कोई किसी बुज़ुर्ग से जब मिलता है तो ज़रा झुक जाता है. पिछले ज़माने में यह रकूअ की हद तक और उससे भी आगे बढ़ कर सजदे की हद तक चला जाता था, और किसी के सामने ताजीमन रकूअ और सजदा करना, बग़ार इस अक़ीदे और और तसव्वुर के उस में कोई अलोहियत या ख़ुदाई इख़्तियार हैं, ममनूअ और हराम नहीं था। लेकिन जब रसूलुल्लाह صَلَّىٱللَّهُعَلَيۡهِوَسَلَّمَ पर हिदायते रब्बानी की तक्मील हुई तो वो तमाम दरवाज़े बन्द कर दिये गए जहां से यह गुमराही और बीमारी नक़ब लगा कर इस उम्मत में दर आ सकती थी। लिहाज़ा इस सजदाहे ताज़ीमी को मुस्तक़िलन हराम क़रार दे दिया गया कि अब किसी नियत से भी ग़ैरुल्लाह को सजदा नहीं होगा, यह सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ ही के लिए है।

इस मामले में हज़रत मुजद्दिद अलिफ़ सानी शैख़ अहमद सर हिन्दी رَحۡمَةُاللّٰهِ की शख़्सियत अज़मत का एक रौशन मीनार है। आपرَحۡمَةُاللّٰهِ हालाँकि सूफ़िया के तब्क़े से ताल्लुक़ रखने वाले हैं, तसव्वुफ़ के मैदान के मुजद्दिद हैं, आपرَحۡمَةُاللّٰهِ का असल तजदीदी कारनामा तसव्वुफ़ के मैदान ही में है, लेकिन यह शख़्स सजदाहे ताज़ीमी के बाब हकूमते वक़्त से टकरा गया। बक़ोल इक़बाल:

गर्दन ना झुकी जिसकी जहाँगीर के आगे
जिसके नफ़्से गरम से है गर्मी-ए-अहरार
वो हिन्द में सरमायाए मिल्लत का निगहबान
अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ ने बरवक़्त किया जिसको ख़बरदार

वाक़्या यूं है कि सजदाहे ताज़ीमी मुग़ल दरबार के अन्दर राइज था। मुजद्दिद अलिफ़ सानी رَحۡمَةُاللّٰهِ ने फ़त्वा दिया कि यह नाजाइज़ और शिर्क है। अब उलमाए सूअ यानी सरकारी

दरबारी उलमा जो सय्यदैन थे बहुते ख़ुश हुए कि अब यह शख़्स सही गिरफ़्त में आया है, इसकी बादशाहत के सामने पेशी कराइ जाए। यह सजदह नहीं करेगा तो बादशाह को ख़ुद बख़ुद पता चल जाएगा के इसके दिल में बाग़याना ख़यालात हैं। चुनांचे बादशाह को हज़रत मुजद्दिद رَحْمَةُاللّٰہِ के ख़िलाफ़ भड़काया गया और उनकी बादशाह के सामने पेशी ते हो गई। अब अहतमाम यह किया गया के बादशाह के सामने पेश होने के लिए उन्होंने जहां से आना था वहां एक दीवार बनाकर इसमें एक छोटी खिड़की रखी गई कि बादशाह के सामने पेश होने के लिए इसमें से गुज़रेंगे तब तो सर झुकाएंगे। लेकिन हज़रत मुजद्दद अलिफ़ सानी رَحْمَةُاللّٰہِ ने इसमें से निकलते हुए टांगे पहले निकालीं और सर बाद में निकाला कि यह शाएबा भी पैदा ना हो के उनकी गर्दन जहांगीर के आगे झुकी थी। इसलिए यह गर्दन सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی के सामने झुकने के लाइक़ है। यह क़लम तो हो सकती है लेकिन अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی के सिवा किसी के सामने झुक नहीं सकती। लिहाज़ा जहां जहां भी मरासिमे उबूदियत अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی के सिवा और के लिए अदा हो रहे हैं, चाहे क़बर को सजदह हो रहा है या किसी और चीज़ को, वो शिर्क है।

नज़र लिग़ैर अल्लाह शिर्क है

नज़र भी सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی के लिए है। चुनांचे नज़र अगर माननी है तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی के लिए मानी जाए, किसी और के लिए क़तअन नहीं। अव्वल तो इस्लाम का मिज़ाज यह है कि नज़र को पसंद ही नहीं करता। यह तो गोया बनया पन की ज़हनियत और घटया सा अन्दाज़ है कि ऐ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی! अगर मेरा यह काम हो जाए तो मैं यह करूंगा और यह काम हो जाए तो मैं दो नफ़िल पढ़ूंगा। तुमने गोया अपने दो नफ़िलों की बड़ी क़ीमत समझी है। अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالٰی से यह सोदे बाज़ी ना करो, बल्कि जो कर सकते हो करो और इससे जो भी मांगना है मांगो। इसके हां मांगने पर कोई क़द ग़न नहीं है। नबी-ए-अकरम صَلَّی اللّٰہُ عَلَیْہِ وَسَلَّمَ से किसी सहाबी رَضِیَ اللّٰہُ عَنْہُ ने नज़र के बारे में दर्याफ़्त किया तो आप صَلَّی اللّٰہُ عَلَیْہِ وَسَلَّمَ ने फ़रमाया ((اَلنَّذْرُ لَا يُقَدِّمُ شَيْئًا وَلَا يُؤَخِّرُهُ، وَإِنَّمَا يُسْتَخْرَجُ بِهِ مِنَ الْبَخِيلِ)) “नज़र किसी शै को ना आगे करती है ना पीछे करती है इससे तो बस बख़ील (कंजूस) से कुछ निकलवा लिया जाता है।”

यानी जो लोग कंजूसी से काम लेते हैं अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ नज़र के ज़रिये उनसे कुछ निकलवाता है। लेकिन बहरहाल अगर नज़र मानी हो तो इसको पूरा करना लाज़िम है। नेक लोगों की सिफ़ात सुरह दहर कि आयत 7 में इर्शादे इलाही है

يُوفُونَ بِالنَّذْرِ وَيَخَافُونَ يَوْمًا كَانَ شَرُّهُ مُسْتَطِيرًا ﴿٧﴾

"यह लोग (दुनिया में) नज़र पूरी करते हैं और उस दिन से डरते हैं जिसकी आफ़त हर तरफ़ फैली हुई होगी"। (अद्दहर /अल इंसान : 7)

ऐसा ना हो कि काम हो गया है तो अब जो थोड़ा बहुत माना था आदमी इसको भी करने को तैयार ना हो। बहरहाल नज़र भी सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है, किसी और के लिए नहीं है। अगर किसी और के लिए नज़र मानी गई तो इसका मतलब तो यह हुआ कि उस को क़ादिरे मुतलक समझा गया है, हाजितरवा और मुश्किलकशा समझा गया है। नज़र जिस के लिए भी होगी इसके लिए यही तसव्वुर ज़हन में होगा और यही तो शिर्क है।

दुआ ग़ैरुल्लाह के लिए नहीं

इबादत के अज्ज़ाअ में से चौथी चीज़ दुआ है। इर्शादे नबवीصَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ है: اَلدُّعَاءُ مُخُّ الْعِبَادَةِ

"दुआ इबादत का जौहर है"। और اَلدُّعَاءُ هُوَ الْعِبَادَةُ दुआ ही इबादत है । इर्शादे इलाही है:

وَقَالَ رَبُّكُمُ ادْعُونِي أَسْتَجِبْ لَكُمْ ۚ إِنَّ الَّذِينَ يَسْتَكْبِرُونَ عَنْ عِبَادَتِي سَيَدْخُلُونَ جَهَنَّمَ دَاخِرِينَ (अलमोमिन:60)

"और तुम्हारे रब ने फ़रमाया कि मुझे पुकारो, मैं तुम्हारी पुकार (दुआ) को क़बूल करूंगा। यक़ीनन जो लोग मेरी इबादत से इस्तकबार करते हैं (घमन्ड करते हैं) वो अन्क़रीब जहन्नम में दाख़िल होंगे ज़लील व रुसवा होकर"।

यह आयत बड़ी अहम है। इसके पहले टुकड़े में लफ़्ज़ "दुआ" और दूसरे टुकड़े में लफ़्ज़ "इबादत" आया है। यानी दुआ से इबाअ करना दरअस्ल इबादत से इबाअ करना है। अगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को पुकारते नहीं हो तो तुम्हारे अन्दर इस्तग़नाअ और तकब्बुर है, तुम अपने आपको कुछ समझे हुए हो। मक़ाने बन्दगी यह है कि बंदा अपने आपको मुहताजे महज़ शुमार करे। इस पर क़ुरआन मजीद में जो नुक़्ताए उरूज है वो हज़रत मूसाعَلَيْهِ ٱلسَّلَامُ की दुआ है:(رَبِّ إِنِّي لِمَا أَنْزَلْتَ إِلَيَّ مِنْ خَيْرٍ فَقِيرٌ) **(अल क़सस : 24)**

ऐ मेरे परवरदिगार! मैं तो फ़क़ीर हूं हर उस शैए का जो तू मेरी झोली में डाल दे"।

एक फ़क़ीर होता है फन्ने ख़ां क़िस्म का कि बीस रुपये का नोट मिले तो ले लेता है और अगर एक 5 रुपये के सिक्के मिलें तो फेंक देता है, जबकि एक फ़क़ीर वो होता है कि एक रुपया भी इसे मिल जाए तो वो इसका भी मोहताज है। लिहाज़ा बन्दगी का तक़ाज़ा है कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सामने मुहताजी ही मुहताजी हो।

इस ले कि अबद तो है ही मुहताज और मक़ामे अब्दियत तो है ही मक़ामे अहत्याज। जामेअए इस्तग़्नाअ तो सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ही को ज़ैब देता है। जैसे फ़रमाया गया है:

(يَا أَيُّهَا النَّاسُ أَنتُمُ الْفُقَرَاءُ إِلَى اللَّهِ وَاللَّهُ هُوَ الْغَنِيُّ الْحَمِيدُ) (फ़ातिर : 15)

"ऐ लोगों! तुम सबके सब फ़क़ीर हो (मोहताज हो) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की जनाब में, और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى तो बेनियाज़, सतौदह सिफ़ात है"।

रसूलुल्लाहصَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने इसकी बड़ी प्यारी मिसाल बयान फ़रमायी है कि "बन्दों का मामला यह है कि अगर उनसे तुम सवाल करते हो तो इन्हें ना गवार गुज़रता है, जबकि (इसके बरअक्स) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى का मामला यह है कि इससे सवाल नहीं करते तो इसे नागवारी होती है"। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى को यह बात नागवार गुज़रती है कि मेरे बंदे मुझसे मांगते नहीं।

हम तो माइल बा करम हैं कोई साइल ही नहीं
राह दिखलाएं किसे राह रवे मंज़िल ही नहीं!

मज़्कूरह बाला आयत (وَقَالَ رَبُّكُمُ ادْعُونِي أَسْتَجِبْ لَكُمْ) फ़अले अमर पर मुश्तमिल है कि "तुम्हारे रब ने कहा कि मुझे पुकारो (मुझसे दुआ करो) मैं तुम्हारी दुआएं क़बूल करूंगा"।

(إِنَّ الَّذِينَ يَسْتَكْبِرُونَ عَنْ عِبَادَتِي سَيَدْخُلُونَ جَهَنَّمَ دَاخِرِينَ) (अल मोमिन:60) "यक़ीनन जो लोग मेरी इबादत से इस्तक्बार करते हैं (घमंड में मुब्तला हैं) वो अन्क़रीब दाख़िल होंगे जहन्नम में ज़लील व रुस्वा होकर"।

दुआ करने और पुकराने में तौहीद यह है कि एक अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى को पुकारना दीगर तमाम पुकारों से मुस्तग़्ना कर दे। अगर एक अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के पुकारने ने तुम्हें मुस्तग़्ना नहीं किया और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى का पुकारना काफ़ी नहीं है तो फिर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى को तुम्हारे पुकारने की क़तअन ज़रूरत नहीं, फिर उन्ही को पुकारो, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى तो बड़ा ग़यूर है। अगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى को पुकारने के बाद भी किसी और को पुकारने और इससे मांगने की

कुछ भी अहत्याज और इम्कान बाक़ी है तो यह "शिर्क फ़िद्दुआ" है। अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ का फरमाने मुबारक है:

وَأَنَّ الْمَسَاجِدَ لِلَّهِ فَلَا تَدْعُوا مَعَ اللَّهِ أَحَدًا (अल जिन्न : 18)

"और यह कि मस्जिदें (या वो इन्सानी अंग जिनके ऊपर सजदा होता है) सब अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के लिए हैं, पस अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के साथ किसी और को मत पुकारो"।

देखिए यहां "مَعَ اللَّهِ" का लफ़्ज़ है कि अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के साथ साथ किसी और को भी पुकारा जाता है तो यह शिर्क है। और अगर किसी को इताअत व मुहब्बत और दुआ के मामले में अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ से भी ऊपर कर दिया तो शिर्क से भी बढ़ कर गुमराही है। और अगर अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ को पुकराने के बजाए किसी और को ही पुकारा जा रहा हो तो यह तो ضَلَّ ضَلَالًا بَعِيدًا वाली बात है। اعاذنا الله من ذلك! लिहाज़ा अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ के इलावह उसके के साथ किसी और को मत पुकारा जाए। यह है "तौहीद फ़िद्दुआ"। हम नमाज़ की हर रक्अत में अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ से इसी का वादा करते हैं कि إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِينُ इबादत का लब्बे लबाब और जौहर चूंकि दुआ है और दुआ ही अस्ल इबादत है लिहाज़ा हमें यह अल्फ़ाज़ सिखाए गए हैं (إِيَّاكَ نَعْبُدُ) "(ऐ अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ!) हम सिर्फ़ तेरी ही बंदगी करते हैं और करते रहेंगे" (وَإِيَّاكَ نَسْتَعِينُ) "और सिर्फ़ तुझसे ही मदद मांगते हैं और मांगते रहेंगे"।

दुआ के ज़िमन में एक और बारीक बहस भी समझ लीजिए! इस्तम्दाद, इस्तद्आ, इस्तन्सार और इस्तग़ासा यह सब एक ही क़बील के अरबी अल्फ़ाज़ हैं। इस्तम्दाद का मतलब है किसी से मदद तलब करना, इस्तद्आया है कि किसी के सामने कोई दरख़्वासत पेश करना, इस्तन्सार से मुराद है किसी से नुसरत चाहना और इस्तग़ासा यह है कि किसी की दुहाई देना। इसकी दो शक्लें हैं। एक शकल है बासबबे ज़ाहिरी किसी से कोई मदद तलब करना। मसलन मैं किसी से कहता हूं कि मुझे ज़रा पानी ला कर पिला दें तो मैंने एक तरह से उससे मदद तलब की। ज़ाहिरी अस्बाब और क़वानीन तबीई के अन्दर किसी से कुछ मांगने और मदद तलब करने के बारे में तीन बातें जान लेना ज़रूरी हैं। पहली बात यह कि इस ज़िमन में मुहम्मद रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने यह तल्क़ीन की है कि हत्तल इम्कान किसी

से मदद ना मांगो, बल्कि अपने काम ख़ुद करो। नबी-ए-अकरम صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ का अपना मिजाज़े गिरामी तो यह था कि अगर आप صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ऊंटनी पर सवार होते और कोड़ा ज़मीन पर गिर जाता तो किसी और से कहने के बजाए ऊंटनी को बैठाते और उतर कर ख़ुद ही कोड़ा उठा लेते, ताकि अस्बाबे ज़ाहिरी के अन्दर भी कोई मसाब्हत पैदा ना हो जाए। लेकिन बहरहाल अस्बाबे ज़ाहिरी के तहत किसी से कोई तआवुन तलब करना, किसी से मदद चाहना अगरचे यह भी एक तरह की दुआ और पुकार है मगर इसमें शिर्क का पहलू नहीं है, बल्कि यह अपने अपने मिज़ाज से मुताल्लिक़ है। अल्बत्ता अगर किसी शख़्स के बारे में यह बात दिल बैठ जाए कि यह शख़्स मेरा काम कर सकता है और इस वजह से उसके सामने गिरया वज़ारी भी हो रही हो और तज़र्रुअ भी हो रहा हो तो यह एक दर्जे में शिर्के ख़फ़ी बन जाता है। उस वक़्त दरअस्ल आदमी हिजाब और मुग़ालते में आ चुका होता है और لَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ إِلَّا بِاللّٰهِ की नफ़ी कर देता है। इस ज़िमन में सहीह तर्ज़े अमल यह है कि किसी शख़्स से कुछ मांगना है तो इस अक़ीदे और यक़ीन के साथ मांगो कि वो शख़्स तुम्हारे लिए सिर्फ़ वही कर सकेगा जो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहेगा। यानी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही इसके दिल में यह बात डालेगा कि तुम्हारे लिए वो काम करे। बहरहाल अस्बाबे ज़ाहिरी के साथ जितना शुग़ल और शग़फ़ रवा है इससे ज़ाइद जब हो जाता है तो मालूम होता है कि इन ज़ाहिरी अस्बाब व वसाइल पर ही तक्या, भरोसा और यक़ीन व ईमान पैदा हो गया है।

आप अपनी बड़ी बूढ़ियों को देखते होंगे कि जब वो बच्चे को दवा पिला रही होती हैं तो शऊरी या ग़ैर शऊरी तौर पर कह रही होती हैं कि “अल्लाह शाफ़ी, अल्लाह काफ़ी”। मरीज़ को दवा पिलाना तो रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की सुन्नत और हिदायत है, लेकिन तौहीद यह है कि तवक्कुल और भरोसा दवा पर ना हो बल्कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ पर हो कि दवा में ताअसीर तब होगी अगर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहेगा, शाफ़ी अस्ल में दवा नहीं है बल्कि अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ चाहे तो बग़ैर दवा के भी शिफ़ा दे देता है। वो शाफ़ी भी है और काफ़ी भी है। लेकिन इसके बरअक्स कैफ़ियत वो होती है कि घुले जा रहे हैं इस सदमे से के हम अपने बच्चे के लिए फ़लां डाक्टर का इलाज नहीं करा पा रहे, या इलाज के लिए अमेरिका या इन्गलिस्तान नहीं भेज पा रहे। इससे यह ज़ाहिर होता है कि इनका अस्ल तक्या और तवक्कुल ख़ुदा की ज़ात के बजाए दवा पर हो गया है। नादानों को यह मालूम

नहीं कि अमेरिका और इंग्लिस्तान में भी लोग मरते हैं। सारे आपरेशन्ज़ और जदीद तरीन इलाज के बावजूद मौत का इलाज तो वहां भी नहीं है और बेहतरीन मुआलिजों के हाथों भी ग़लतियां होती हैं। अमेरिकी में तो इस स्पेशलाइज़ेशन के दौर में भी बड़े बड़े बलन्डर्ज़ और हिमाक़तें हो रहीं हैं। ऐसा हर गिज़ नहीं है कि शिफ़ा उनके हाथ में है। सहीह तर्ज़े अमल यही है के जितने कुछ अस्बाब व वसाइल हमारी इस्तताअत में है उनसे इस्तफ़दह करें और अक़ीदा रखें के शिफ़ा सिर्फ़ और सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के हाथ में है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى मुआज़ुल्लाह, इन वसाइल का मुहताज नहीं है, वो जो करना चाहे बग़ैर किसी सबब के ख़ुद करने पर क़ादिर है। और अस्बाब में भी कोई ताअसीन नहीं है जब तक अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ना चाहे। शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी رَحْمَةُ اللَّهِ ने अपने बच्चो को नसीहत करते हुए सद फ़ी सद दुरुस्त कहा था कि لَا فَاعِلَ فِي الْحَقِيقَةِ وَلَا مُؤَثِّرَ إِلَّا اللَّهُ "फ़ाइले हक़ीक़ी और मोअस्सिरे हक़ीक़ी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सिवा कोई नहीं"। तो ज़ाहिरी अस्बाब में जब आदमी किसी के सामने गिड़गिड़ाए, अपने आपको इसके सामने ज़लील करे और अपनी इज़्ज़ते नफ़्स का धेला करे यह समझ कर के बस यही मेरा काम कर सकता है और इसी के हाथ में मेरा ख़ैर या शर है तो वहां शिर्क खफ़ी की आमेज़िश पैदा हो जाती है। अल्ब्ता ज़ाहिरी अस्बाब से बाला तर होकर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के सिवा किसी को हरगिज़ नहीं पुकारह जा सकता, ना किसी वली की रूह को, ना किसी नबी की रूह को और किसी फ़रिश्ते को। किसी ग़ैरुल्लाह के लिए इस्तम्दाद, इस्तद्आ, इस्तन्सार और इस्तग़ासा कुल का कुल शिर्क है।

इस ज़िमन में एक लतीफ़ सी बहस और भी है जिसकी में वज़ाहत कर देना चाहता हूं। सूफ़िया के हां यह राए बड़ी आम और फैली हुई है कि औलिया अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की रूहें इंतक़ाल के बाद मलाइका के तब्क़ाए अस्फ़ल के साथ शामिल कर दी जाती हैं। मलाइका अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى की इस आलमी हकुमत के कारिन्दे हैं। यह इसकी सिविल सर्विस है कि फ़लां हुक्म की तन्फीज़ के लिए इसे फ़लां फ़रिश्ते के हवाले कर दिया जाए। वाज़ेह रहे है कि हुक्म अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ही का होता है। फ़रिश्तों के बारे में क़ुरआन हकीम में आया है:

لَّا يَعْصُونَ اللَّهَ مَا أَمَرَهُمْ وَيَفْعَلُونَ مَا يُؤْمَرُونَ (अत तहरीम : 6)

"वो (फ़रिश्ते) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के हुक्म की नाफरमानी नहीं करते और वही कुछ करते हैं जिसका इन्हें हुक्म दिया जाता है"।

मलाइका के मुख़्तलिफ़ तब्क़ात हैं। यानी मलाए आला, मलाइका मुक़र्रबैन, सातों आसमानों के मलाइका और फिर मलाइकतुल अर्ज़। मलाइकतुल अर्ज़ जो हैं वो तब्क़ाए अस्फ़ल है, यानी सबसे निचला तब्क़ा जो यहां अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के अहकाम की तन्फीज़ में लगा हुआ है। तो एक राए यह है कि औलियाअ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की अर्वाह को भी उनके इन्तिक़ाल के बाद मलाइका के तब्क़ाए अस्फ़ल में शामिल कर दिया जाता है और वो भी अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की सिविल सर्विस में शरीक हो जाते हैं। मुझे अगरचे किताब व सुन्नत से ऐसी कोई दलील नहीं मिली कि मैं हतमी तौर पर यह सकूं कि यह राए दुरुस्त है, लेकिन यह ख़ारिज अज़ इम्कान भी नहीं है और मेरे नज़दीक इसको मान लेने में कोई हर्ज नहीं है। शाह वलीउल्लाह देहलवीرَحْمَةُ ٱللَّهِ के साथ मुझे एक गहरी मुहब्बत है और मैं जानता हूं कि आपرَحْمَةُ ٱللَّهِ यह लाए हैं कि जब ग़जोए मोता में हज़रत जाअफ़र बिन अबी तालिब (जाअफ़र तयारرَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ) शहीद हुए और उनके दोनों बाज़ू कट गए तो रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने फ़रमाया: رَاَیْتُ جَعْفَرًا یَطِیْرُ فِی الْجَنَّةِ مَعَ الْمَلَائِکَةِ "मैंने देखा के जअफ़रرَضِيَ ٱللَّهُ عَنْهُ मलाइका के साथ जन्नत में उड़ते फिर रहे हैं।"

अगरचे इस हदीसे मुबारका की रो से मामला शोहदाअ से मुताल्लिक़ है, लेकिन अगर इस दलील को मान भी लिया जाए कि मलाइका के तब्क़ाए अस्फ़ल में औलियाअल्लाह की अर्वाह भी शामिल हो जाती हैं और अहकामे ख़ुदावन्दी की तन्फीज़ में मलाइका के साथ वो भी शामिल हो जाते हैं, फिर भी इससे यह नतीजा हरगिज़ नहीं निकलता कि इनको पुकारा जाए। यह तो ख़ैर तब्क़ाए अस्फ़ल से मुताल्लिक़ हैं, मलाए आला को पुकारना भी शिर्क है। अगर कोई कहे कि یَا جِبْرَاءِیْلُ اَغِثْنِیْ "ऐ जिब्राईल! मेरी मदद को पहुंचो" तो यह शिर्क हो जाएगा। पुकारा जाएगा सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को। वो मदद के लिए चाहे जिब्राईल को भेजे, मीकाइल को भेजे या किसी वली अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की रूह को भेज दे, यह उसी का काम है। हमें इजाज़त नहीं है कि किसी और को पुकारने की। हमें बस यही हुक्म है कि सिर्फ़ अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ को पुकारो। क़ुरआन के शब्दों मे فَلَا تَدْعُوا مَعَ اللَّهِ أَحَدًا (अल जिन्न:18) "पस अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ किसी और को मत पुकारो!" और: وَلَا تَدْعُ مَعَ اللَّهِ إِلَٰهًا آخَرَ (अलक़सस:88) "और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के साथ किसी और माबूद को मत पुकार"। अगर कोई शख़्स इल्मी

एतबार से औलिया अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के बारे मे मज़कूरह बाला राए रखता है तो इसमें शिर्क का कोई पहलू नहीं है, लेकिन अगर इनको पुकारा जाए तो यह शिर्क हो जाएगा। माफ़ोकुल आदत यानी क़ानूने तबीई व ज़ाहिरी से ऊपर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के सिवा किसी को पुकारा जाए तो इसके शिर्क होने में क़तअन किसी शक व शुबा की गुंजा इश नहीं।

इबादत की क़बूलियत

इबादत का पांचवां और आख़िरी जुज़्व "इख़्लास" है जो इबादत की क़बूलियत की शराइते लाज़िम है। इसकी ज़िद है रिया और सुम्आ, यानी लोगों को दिखाने और सुनाने के लिए कोई नैक काम करना कि लोग मेरी मदह व सताइश करें। इनके शिर्क होने में भी किसी शक व शुबा की गुंजाइश नहीं है, और इनका शिर्क होना रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने ख़ूब वाज़ेह किया है। एक हदीसे नबवी صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ मुलाख़्ता हो:

مَنْ صَلَّى يُرَائِي فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ صَامَ يُرَائِي فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ تَصَدَّقَ يُرَائِي فَقَدْ اَشْرَكَ "जिसने दिखावे के लिए नमाज़ पढ़ी वो शिर्क कर चुका, जिसने दिखावे के लिए रोज़ा रखा वो शिर्क कर चुका और जिसने दिखावे के लिए सद्क़ा किया वो शिर्क कर चुका।"

अरबी ज़बान में फ़अले माज़ी पर जब "क़द" लगता है तो यह माज़ी क़रीब या Present Perfect Tense का मफ़्हूम पैदा करता है कि फ़लां काम क़ताइ और यक़ीनी तौर पर हो चुका, इसमें किसी शक व शुबा की गुंजाइश नहीं है। रसूलुल्लाह صَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ ने हमारी हिदायत और रहनुमाई के लिए इसे इस क़दर बारीक बीनी के साथ वाज़ेह किया है कि अगर कोई शख़्स नमाज़ पढ़ने के लिए खड़ा हो और वो यह देखते हुए के उसे कोई देख रहा है, नमाज़ ज़रा रुक रुक कर और ठहर ठहर कर पढ़ना शुरूअ कर दे, सजदा ज़रा तवील कर दे तो यह "शिर्के ख़फ़ी" है। मैं मिसाल के तौर पर बयान किया करता हूं कि अगर आप नमाज़ पढ़ रहे हों और आपको कोई देख ना रहा हो तो आप मामूल के मुताबिक़ तीन सेकन्ड का सजदा करें, लेकिन जब आप देखें कि कोई आप को देख रहा है तो आपका सजदा पांच सेकन्ड का हो जाए, तो आप सोचें के मज़ीद दो सेकन्ड का सजदा किसके हिसाब में है ? जान लीजिए कि आपका तीन सेकन्ड का मामूल का सजदा तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के लिए है, जबकि दो इज़ाफ़ी सेकन्ड के सजदे का मस्जूद अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ

नहीं है बल्कि वो जिसे आप दिखा रहे हैं। गोया एक सज्दे के दो मस्जूद हो गए और यही शिर्क है। रसूलुल्लाह صَلَّىٱللَّهُعَلَيۡهِوَسَلَّمَ ने इसे "शिर्के ख़फ़ी" कहा है, اعاذنااللہ من ذٰلک "शिर्के ख़फ़ी" के बारे में रसूलुल्लाह صَلَّىٱللَّهُعَلَيۡهِوَسَلَّمَ का इर्शाद है कि इसका देखना और पहचानना इतना ही मुश्किल है जितना इन्तिहाई तारीक रात में स्याह पत्थर पर रेंगती हुई एक स्याह चयूंटी को देखना मुश्किल है। अब सोचिये कि कौन बचेगा इस शिर्क से ?

शिर्क की मौइय्यिन करदा तीन अक़्साम सामने आ जाने के बाद यह हक़ीक़त खुल कर सामने आ जाती है कि यह कितनी बड़ी बात है कि अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ अपने किसी बन्दे के बारे में यह कह दे कि मेरा यह बंदा मुशरिक नहीं है। और हज़रत इब्राहीम عَلَيۡهِٱلسَّلَامُ के बारे में अल्लाहتَبَارَكَوَتَعَالَىٰ ने फ़रमाया: (وَمَا كَانَ مِنَ ٱلۡمُشۡرِكِينَ) (अल बक़रह: 135) "और वो (यानी मेरा बंदा इब्राहीमعَلَيۡهِٱلسَّلَامُ) मुशरिकीन में से नहीं था"। मालूम हुआ कि जो कुछ कहा जा सकता था इस एक जुम्ले में कह दिया गया। इससे बड़ी मदह व सताइश और शाबाश और क्या होगी और इससे बड़ी सनद, इससे बड़ा सर्टिफ़िकेट और शहादत नामा (testimonial) और क्या होगा कि "मेरा फ़लां बन्दा मुशरिकीन में से नहीं था"। यही बात है जो बड़े प्यारे अंदाज़ में इक़बाल ने कही है:

बराहीमी नज़र पैदा मगर मुशकिल से होती है
हवस छुप छुप के सीनों में बना लेती है तस्वीरें

अपने सीनों के अन्दर जो बुत कदे आबाद हैं इनकी तरफ़ इंसान की नज़र नहीं जाती, जबकि बाहर के बुत कदे नज़र आ जाते हैं। आपने जी गढ़ेश का बुत पूजते हुए किसी को देखा तो कहा यह शिर्क है। आप किसी क़बर को सजदा करते हुए किसी को देखा तो कहा यह शिर्क है। आपने किसी को किसी ग़ैर अल्लाह को पुकारते हुए सुना तो कहा यह शिर्क है। यह बात दुरुस्त है। इस चीज़ के शिर्क होने में कोई शक व शुबा नहीं है। लेकिन अपनी निगाह को ज़रा और वसीअ कीजिए और देखिए कि आपके अक़ीदे और अमल में कहां कहां शिर्क की आमेज़िश है। ख़ास तौर पर इस दौर के जो शिर्क हैं इनको समझिये यह मादह परस्ती का शिर्क, वतन परस्ती का शिर्क, शख़्सियत परस्ती का शिर्क, अपनी हवा और हवस को पूजने का शिर्क और ख़ुद परस्ती का शिर्क कि ख़ुद अपने आपको पूज रहे हैं "अपने ही हुस्न का दीवाना बना फिरता हूं" अपनी ही ज़ात और नफ़्स के गिर्द इन्सान तवाफ़ किये

चला जा रहा है, यह अस्ल में इस दौर के शिर्क हैं जिनको समझना होगा। बहर हाल हर ख़ैर और भलाई ख़वाह नज़रिये और फ़िक्र की हो, अक़ीदे की हो, अमल की हो, इख़्लाक़ की हो, वो तौहीदी का कोई गोशा और तौहीदी की कोई शाख़ (corollary) है। "यह सब क्या हैं फ़क़त एक नुक़्ताए ईमां की तफ़्सीरें !" इसके बरअक्स हर ज़ेग़, कजी और गुमराही चाहे वो नज़रियह और फ़िक्र की हो, अक़ीदे की हो, इल्म की हो, अमल की हो, अख़्लाक़ की हो, शिर्क ही की कोई ना कोई सूरत है।

क्या अल्लाह की हर मअसयत शिर्क है?

अब बाज़ हज़रात के ज़हनों में शिद्दत से यह सवाल पैदा हो रहा होगा कि शिर्क की जो मज़्कूरह बाला तशरीह सामने आई है इसकी रू से तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की हर मअसयत शिर्क है ? मिसाल के तौर पर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का हुक्म था नमाज़ पढ़ो, मगर हमने अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का हुक्म छोड़ कर नफ़्स का हुक्म मानते हुए नमाज़ तर्क कर दी तो यह शिर्क हो गया। ऐसे ही माल कमाने में हमने शरीअत का हुक्म तर्क कर दिया और अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की मुहब्बत से माल की मुहब्बत बढ़ गई तो यह शिर्क हो गया। इस तरह से तो हर गुनाह शिर्क है। जबकि क़ुरआन मजीद दो जगह फरमाता है कि

(إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَن يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ) (अन्निसाअ:48, 116)

"यक़ीनन अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ इसको तो हरगिज़ माफ़ नहीं फ़रमायेगा कि इसके साथ शिर्क किया जाए, अल्बत्ता इससे कम तर गुनाह जिसको चाहेगा बख़्श देगा"। तो अब वो कमतर का दाएरह जिसमें मग़्फ़िरत की उम्मीद है, वो क्या है ? यह सवाल बहुत अहम और पूरी बहस से मुताल्लिक़ है। यह सवाल ज़हनों में लाज़िमन पैदा होना चाहिए। अगर किसी के ज़हन में यह सवाल पैदा नहीं हो रहा तो गोया उसने "हक़ीक़त व अक़्सामे शिर्क" की इस पूरी बहस पर तवज्जो ही नहीं की।

गुनाहों के बाब में एक बात तो यह जान लीजिए कि क़ुरआन मजीद ने एक तरफ़ तो सग़ीरह और कबीरह गुनाहों की तक़सीम की है और सग़ाइर के बारे में बहुत उम्मीद दिलाई है कि वो माफ़ हो जाते हैं। इनके बारे में एक क़ाइदहे कुल्लिया तो यह सामने आता है कि इन पर गिरफ़त शदीद नहीं है। चुनांचे सूरतुल नजम में इर्शादे इलाही :

(الَّذِينَ يَجْتَنِبُونَ كَبَائِرَ الْإِثْمِ وَالْفَوَاحِشَ إِلَّا اللَّمَمَ) (आयत 32) “जो लोग बड़े बड़े गुनाहों और खुले खुले क़बीह अफ़आल से परहेज़ करते हैं इल्ला यह के कुछ क़सूर (छोटे गुनाह) उनसे सर ज़द हो जाए”। छोटे छोटे गुनाहों को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى माफ़ फरमाता है, अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى के हां इनकी गिरफ़्त नहीं है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى, معاذالله, ख़ुर्दागीर नहीं है कि हर छोटी छोटी बात की गिरफ़्त फ़रमाये। यही बात सूरतुल शूरा में यूं फ़रमायी गई :

(وَالَّذِينَ يَجْتَنِبُونَ كَبَائِرَ الْإِثْمِ وَالْفَوَاحِشَ) (आयत37) “वो लोग कि जो बड़े बड़े गुनाहों और बे हयाई के कामों से परहेज़ करते हैं.......” तो मालूम हुआ के अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى ने “सग़ाइर” का मामला कई एतबारात से “कबाइर” से अलग रखा है।

गुनाहों के बारे में क़ुरआन व हदीस से एक तसव्वुर यह भी सामने आता है कि सग़ीरह गुनाह ख़ुद बख़ुद भी धुलते रहते हैं। इर्शादे इलाही (إِنَّ الْحَسَنَاتِ يُذْهِبْنَ السَّيِّئَاتِ) (हूद:114) “यक़ीनन अच्छाइयां सय्यात (छोटी छोटी बुराईयों) को ख़्तम कर देती हैं।” जब आप कोई नैकी करते हैं तो सग़ाइर धुलते रहते हैं, लेकिन कबाइर नहीं। कोई शख़्स नमाज़ की ग़र्ज़ से मस्जिद की तरफ़ चले तो हर क़दम पर उसके सग़ीरह गुनाह माफ़ हो रहे होते है। एक हदीसे नबवी صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ में आता है कि वज़ू करते हुए जब कोई शख़्स हाथों को धोता है तो इसके हाथों के सग़ीरह गुनाह धुल जाते हैं। इसी तरह बाक़ी आज़ाए वज़ू के मुताल्लिक़ फ़रमाया कि इनको धोते हुए इनसे सरज़द होने वाले गुनाह धुल जाते हैं। यह दीन के हक़ाइक़ और इनसे क़तअन किसी दर्जे में भी इख़्तलाफ़ नहीं किया जा सकता।

गुनाह के बारे में क़ुरआन मजीद दूसरा फ़र्क़ यह करता है कि एक है “कसब” के जान बूझ कर और इरादे से कोई ग़लत काम करना, जबकि एक है “ख़ता और नसयान” के ज़होल हो गया, भूल गए, ग़फ़लत का परदा पड़ गया, लिहाज़ा कोई ग़लती सादिर हो गई। इसमें इरादे और कसब को दख़ल नहीं। बिल्फ़ाज़े दीगर ग़लत काम करने की नियत नहीं थी मगर ख़ता और नस्यान से ग़लत काम हो गया। ख़ता का मतलब है निशाने का चूक जाना। यानी निशाना लगाना चाह रहे थे कहीं और लेकिन लग गया कहीं और। तो नस्यान और ख़ता से गुनाह का सादिर हो जाना और शैए से है, जबकि कसब से गुनाह का सादिर हो जाना और शैए है। सूरतुल बक़रह की आख़िरी दो आयात के बारे में फ़रमाया गया है कि यह अर्श के

नीचे के ख़ज़ानों में से दो अहम ख़ज़ाने हैं और यह तोहफ़ा शबे मअराज के मोक़े पर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने अपने रसूलुल्लाहصَلَّى ٱللَّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ की वसातत से उम्मते मुस्लिमा को अता किया है। इनमें से दूसरी आयत का एक टुकड़ा हमारी इस बहस से मुताल्लिक़ है। अल्फ़ाज़ मुलाख़्ता हों: رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَا إِن نَّسِينَا أَوْ أَخْطَأْنَا (आयत 286) “ऐ रब हमारे! अगर हम भूल और ख़ता (से कोई ग़लती सर ज़द) हो जाए तो हमारी गिरफ़्त न कीजियो!” लेकिन अगर कसब हो रहा हो और जान बूझ कर कोई गुनाह कमाया जा रहा हो और उस पर फिर डेरा जमा लिया जाए तो इस सूरत में यक़ीनन एक बड़ा गुनाह भी शिर्क के दरजे को पहुंच जाता है। एक शख़्स सूद को अपने कारोबार में मुस्तक़िलन शामिल किये हुए है तो इसमें किसी इंसान और ख़ता का मामला नहीं, बल्कि इसने इरादी तौर पर और आला वजा अलबसीरत एक हराम चीज़ को इख़्तियार कर रखा है और वो उसके कारोबार का जुज़्वे लानिफ़क है तो यह चीज़ दर हक़ीक़त शिर्क है। जान लीजिए कि अगर मन्तिकी तौर पर तज्ज़िया करेंगे तो हर गुनाह शिर्क बन जाएगा, इसलिए के माअसयत का दानिस्ता इर्तकाब करके एक शख़्स ने गोया अपनी ख़्वाहिशात व जज़्बात और दुन्यवी मफ़ादात को अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के अहकाम पर फ़ौक़यत देदी या इन्हें अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ की पसंद व ना पसंद के बराबर ले आया। लेकिन यह अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का बहुत बड़ा करम और महरबानी है कि जब तक गुनाह ज़हूल, ख़ता और नसयान के दर्जे में हो तो उसको शिर्क क़रार नहीं दिया गया। लेकिन मैं यह बात तकरार व अआदह अर्ज़ कर रहा हूं कि अगर कोई ग़लत काम “कसब” के दर्जे में हो और फ़ैसले, शऊर और इरादे के साथ किया जा रही हो और इस पर इन्सान मुस्तक़िलन डेरा जमा कर बेठ जाए तो वो शिर्क के दर्जे को पहुंच जाएगा। अल्बत्ता अगर अज़तराही हालत दरपेश हो, इन्सान की जान पर बनी हो और वो भूख से मरा जा रहा हो तो इस हालत में इन्सान सुअर भी खा ले तो गुनाह नहीं है। अज़रोए अल्फ़ाज़े क़ुरआनी

(فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَلَا عَادٍ فَلَا إِثْمَ عَلَيْهِ) (अल बक़रह:173) “पस जो मजबूर हो (बशर्त यह कि) सर कशी और हद से तजाविज़ ना हो तो (मज़्कूरह बाला हराम अश्या खा लेने में) उस पर कोई गुनाह नहीं है।” ऐसे ही अगर जान पर बनी हो और सूद के इलावा जान बचाने का कोई रास्ता ना हो तो यह भी माफ़ है। इस ज़िमन में सूरतुल बक़रह की आयत 81 मुलाख़्ता कीजिए।

بَلَىٰ مَن كَسَبَ سَيِّئَةً وَأَحَاطَتْ بِهِ خَطِيئَتُهُ فَأُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۖ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ

क्यों नहीं; जिसने भी कोई बदी कमाई और उसकी खताकारी ने उसे अपने घेरे में ले लिया, तो ऐसे ही लोग आग (जहन्नम) में पड़नेवाले है; वे उसी में सदैव रहेंगे

इर्शाद हुआ: بَلَىٰ مَن كَسَبَ سَيِّئَةً "क्यों नहीं! जिसने एक बुराई भी कमाई (कसब किया)......" ख़ता, नसयान और अज़रार इसमें शामिल नहीं है, बल्कि यह वो बुराई है जो जान बूझ कर कमाई गई हो और चाहे वो एक ही क्यों ना हो। "سَيِّئَةً' इस्मे नकरह है। नकरह में तफ़्ख़ीम भी होती है कि कोई बड़ी चीज़। यानी इसमें "सग़ाइर" शामिल नहीं हैं" बल्कि सिर्फ़ "कबाइर" हैं। आगे फ़रमाया : وَأَحَاطَتْ بِهِ خَطِيئَتُهُ "और इसका घेरा कर लिए इसके गुनाह ने......." इस एक गुनाह पर वो इस तरह डेरा जमा कर बैठा हुआ है कि गुनाह ने उसको अपने घेरे में ऐसे ले लिया है कि कोई जानिब ऐसी नहीं जहां गुनाह का ग़लबा ना हो। فَأُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۖ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ "तो यही लोग जहन्नमी हैं। वो इसमें हमेशा के लिए रहेंगे। यानी यह वो जहन्नमी नहीं है जो आग से बिल आख़िर निकल आएंगे। यह ख़लूद फ़िन्नार की सज़ा है जो कुफ़्फ़ार और मुशरिकीन के लिए है। मालूम हुआकि एक बड़ा गुनाह भी अगर यह शर्तें पूरी कर रहा हो कि वो फ़ैसले और इरादे से किया गया हो और उसपर दवाम हो और उसने आसी का इस तरह अहाता कर लिया हो के कोई जानिब ऐसी ना रही हो जहां गुनाह का ग़लबा ना हो तो वो अपनी हक़ीक़त के एतबार से शिर्क है। अलबत्ता अगर किसी से ख़ता हो जाए और उस पर उसकी पेशमानी हो और एहसास हो जाए कि इससे ग़लती हुई है और वो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى से बख़्शिश तलब करे, इस पर डेरा ना जमा ले और इसे अपनी ज़िंदगी का मुस्तक़िल जुज़्व बनाने का इरादा ना हो तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَى इसका हिसाब व किताब साफ़ कर देता है।

शिर्किया आमाल करने वालों पर मुशरिक का फ़त्वा ?

इस ज़िमन में एक बहुत बड़ा मस्अला यह भी समझ लीजिए कि हमारे हां बाज़ लोग ऐसे हैं कि उनकी रूहे तौहीदी जब ज़्यादा बेदार हो जाती है तो वो मुशरिक फ़तवा लगाने के लिए बड़े बैताब होते हैं कि फ़लां भी मुशरिक और फ़लां भी मुशरिक। यह बहुत बड़ा फ़ितना

है। सहीह तर्ज़े अमल यह है कि हर चीज़ का तज़्ज़िया करके बता दिया जाए कि यह शिर्क है, लेकिन करने वाले को मुशरिक हरगिज़ ना कहा जाए। मिसाल के तौर पर देखिए कि क़ुरआन मजीद ने जहां बुत परस्तों को मुशरिक क़रार दिया है वहां अहले किताब को मुशरिक क़रार नहीं दिया। इनका शिर्क बयान क्या है, लेकिन इनकी केटागिरी जुदा रखी है। आख़िरी वक़्त तक यह दो केटागिरिज़ अलैहदा अलैहदा रही हैं। क़ुरआन हकीम में फ़रमाया गया है:

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا مِنْ أَهْلِ الْكِتَابِ وَالْمُشْرِكِينَ فِي نَارِ جَهَنَّمَ خَالِدِينَ فِيهَا(अल बैय्यनह:6)

"यक़ीनन जिन लोगों ने कुफ़्र किया अहले किताब में से और मुशरिकीन में से वो जहन्नम की आग के मुस्तहिक़ हैं और वो इसमें हमेशा रहेंगे"।

मालूम हुआ कि मुशरिकीन में से कुफ़्फ़ार और अहले किताब में से कुफ़्फ़ार यह दो अलैहदा केटागिरिज़ हैं। एक मुसलमान कुफ़्फ़ारे अहले किताब की लड़कियों से शादी कर सकता है, लेकिन कुफ़्फ़ारे मुशरिकीन की लड़कियों से शादी नहीं कर सकता। शरीअत के अन्दर यह फ़र्क़ है। अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इनके लिए तो नाम ही रखा है। "मुशरिक"। जबकि अहले किताब अगरचे शिर्क में मुलव्विस हैं, अज़रोए अल्फ़ज़े क़ुरआनी:

وَقَالَتِ الْيَهُودُ عُزَيْرٌ ابْنُ اللَّهِ وَقَالَتِ النَّصَارَى الْمَسِيحُ ابْنُ اللَّهِ ۖ ذَٰلِكَ قَوْلُهُم بِأَفْوَاهِهِمْ ۖ يُضَاهِئُونَ قَوْلَ الَّذِينَ كَفَرُوا مِن قَبْلُ ۚ قَاتَلَهُمُ اللَّهُ ۚ أَنَّىٰ يُؤْفَكُونَ ﴿30﴾ اتَّخَذُوا أَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ أَرْبَابًا مِّن دُونِ اللَّهِ وَالْمَسِيحَ ابْنَ مَرْيَمَ وَمَا أُمِرُوا إِلَّا لِيَعْبُدُوا إِلَٰهًا وَاحِدًا ۖ لَّا إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ ۚ سُبْحَانَهُ عَمَّا يُشْرِكُونَ ﴿31﴾

यहूदी करते है, "उज़ैर अल्लाह का बेटा है।" और ईसाई कहते है, "मसीह अल्लाह का बेटा है।" ये उनकी अपने मुँह की बातें हैं। ये उन लोगों की-सी बातें कर रहे है जो इससे पहले इनकार कर चुके है। अल्लाह की मार इन पर! ये कहाँ से औंधे हुए जा रहे हैं! (30) उन्होंने अल्लाह से हटकर अपने धर्मज्ञाताओं और संसार-त्यागी संतों और मरयम के बेटे ईसा को अपने रब बना लिए है - हालाँकि उन्हें इसके सिवा और कोई आदेश नहीं दिया गया था कि अकेले इष्टि-पूज्य की वे बन्दगी करें, जिसक सिवा कोई और पूज्य नहीं। उसकी महिमा के प्रतिकूल है वह शिर्क जो ये लोग करते है। - (31)

"यहूदियों ने कहा उज़ैर अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का बेटा है और नसारा ने कहा मसीह (ईसा अलैहस्सलाम) अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ का बेटा है"। तो अल्लाहتَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ने इनका शिर्क तो बयान किया है लेकिन इनको मुशरिक क़रार नहीं दिया। चुनांचे क़ुरआन मजीद से इस अन्दाज़ से कस्बे हिदायत करने की ज़रूरत है। मुझे यक़ीन है कि कोई भी मुसलमान जिसने मुसलमान मां का दूध पिया है और इसकी जो एक ज़हनी साख़्त बनी हुई है और जिस मिट्टी से

इसका ख़मीर उठा है वो जान बूझ कर शिर्क नहीं कर सकता। यह सब मुग़ालते और गुमराहियां हैं, ना समझी और ग़लू है। तो इन गुराहियों की नफ़ी कीजिए, इन्हें वाज़ेह कीजिए हिदायत को आम कीजिए और इसमें मदाहनत हरगिज़ ना कीजिए, लेकिन ऐसे लोगों पर शिर्क के फ़तवे लगा कर उनसे अपने आपको काट लेना या उनको ख़ुद से काट देना, यह ना तो क़ुरआन मजीद की रूह के मुताबिक़ है और ना ही मुहम्मद रसूलुल्लाह ﷺ के उसवह के मुताबिक़ है। शिर्क को बयान करने में मदाहनत ना की जाए, लेकिन जिस शख़्स के आमाल में शिर्क की आमेज़िश नज़र आ जाए उस पर गरामर का क़ानून लागू करते हुए इसे मुशरिक ना कह दिया जाए।

इसी तरह कुफ़्र का मामला है। अगर अहादीसे नबवी ﷺ की रौशनी में तज्ज़िया करेंगे तो मालूम होगा कि जिसने एक नमाज़ भी तर्क की उसने कुफ़्र किया। हदीसे नबवी ﷺ है; اَلصَّلَاةُ عِمَادُ الدِّيْنِ "नमाज़ दीन का सुतून है"। और مَنْ تَرَكَ الصَّلَاةَ مُتَعَمِّدًا فَقَدْ كَفَرَ جِهَارًا जिसने जान बूझ कर (बग़ैर किसी शरई उज़्र के) नमाज़ को तर्क कर दिया वो अलानिया कुफ़्र कर चुका।" मज़ीद बरआं सहीह मुस्लिम की हदीस है: بَيْنَ الرَّجُلِ وَبَيْنَ الشِّرْكِ وَالْكُفْرِ تَرْكُ الصَّلَاةِ "आदमी और कुफ़्र व शिर्क के दर्मियान नमाज़ का मामला हाइल है"। तो क्या जिसने एक नमाज़ छोड़ी उसे काफ़िर कह दिया जाएगा ? इन चीज़ों में ज़मीन व आसमान का फ़र्क़ है। जिन लोगों के अन्दर जज़्बाए तौहीद और दीनी हम्यत बेदार हो जाती है मैं उनके लिए भी हमदर्दी के साथ यह बात अर्ज़ कर रहा हूं कि वो अपने ख़ुलूस और इख़्लास ही की वजह से हद तक तजाविज़ कर जाते हैं। इस ज़िमन में ज़रूरत इस बात की है कि शिर्क को शिर्क ज़रूर कहा जाए, लेकिन जो मुसलमान हैं उनके ऊपर शिर्क के फ़त्वे लगाकर उनको एक दूसरे से अलैहदा कर देना हिक्मते दीन, हिक्मते इस्लाह व दाअवत और हिक्मते तब्लीग़ के ख़िलाफ़ है।

मज़्कूरह बाला बहस की वज़ाहत के लिये में एक और मिसाल देता हूं। देखिए चोरी एक रुपया की भी चोरी है। मस्जिद से कोई थोड़ा से सामान चुरा लिया जाए तो वो भी चोरी है, लेकिन हाथ काट ने की सज़ा हर चोरी पर नहीं है। ऐसा हरगिज़ नहीं है कि किसी ने एक रुपया किसी का चुरा लिया तो उसका हाथ काट दिया जाए। معاذ الله इस्लाम में ऐसा

ज़ुल्म नहीं है। ऐसे ही मुश्तरिक माल में से एक फ़रीक़ कुछ माल चुरा ले तो उस पर भी क़तअए यद की सज़ा लागू नहीं होगी, इसलिए कि वो माल चुराने वाला ख़ुद इसकी मिलकियत में शरीक है। इसी तरह ग़ैर महफ़ूज़ माल की चोरी पर भी चोर का हाथ नहीं काटा जाएगा। चुनांचे जिस चोरी पर क़तअए यद की सज़ा है फ़िक्हाए कराम ने इसकी पूरी वज़ाहत से ताअरीफ़ (definition) की है। बाक़ी चोरियों पर ताअज़ीर है कि क़ानून के तहत किसी क़ेद की सज़ा दे दी जाए या कुछ कोड़े मारे जाएं। तो जिस तरह एक रुपया की चोरी भी चोरी है, लेकिन चोरी पर शरई चोरी का अतलाक़ होगा और हाथ कटेगा वो कुछ और शैए है। इसी तरह अगर तज्ज़िया करेंगे तो हर गुनाह शिर्क है, इसमें कोई शक नहीं है, लेकिन शिर्क का इतलाक़ हरगिज़ नहीं होगा। बल्कि अगर वो कसब में दाख़िल है, बड़ा गुनाह है और मुस्तक़िल हो गया है तो वो यक़ीनन शिर्क के दर्जे को पहुंच जाएगा। लिहाज़ा इस फ़र्क़ को मलहोज़े ख़ातिर रखना चाहिये ! हर गुनाह का इर्तिकाब करने वाला मुशरिक नहीं हो जाएगा। और अगर किसी मुसलमान का कोई गुनाह शिर्क की तमाम शराइत पूरी कर रहा है तो फिर भी इस पर मुशरिक का फ़तवा लगाने की क्या ज़रूरत है ? अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ हिसाब लेने वाला मौजूद है। बल्कि इस्लामी रियासत के अंदर भी किसी मुसलमान पर मुशरिक का फ़तवा नहीं लगेगा। इसमें भी "मुस्लिम" और "काफ़िर" दो ही केटागिरिज़ हैं, तीसरी कोई केटागिरी मुअय्यिन नहीं है। यह तक़सीम तो हो सकती है कि फ़लां शख़्स काफ़िर है और फ़लां मुस्लिम है, लेकिन किसी को मुशरिक क़रार दे देना, इसका भी को फ़तवा क़ानूने शरीअत में मौजूद नहीं है। इस दुनिया में किसी को हम यह सनद नहीं दे सकते कि वो मोमिन है। यह अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ ही जानता है कि किसके दिल में कितना ईमान है। हम इसके ज़ेरे बहस नहीं ला सकते, हम तो ज़ेरे बहस लाएंगे इस्लाम और कुफ़्र को। और तक्फ़ीर भी जान लीजिए कि इन्फ़रादी मामला (individual act) नहीं है कि जो शख़्स चाहे खड़ा होकर फ़तवा देदे के फ़लां काफ़िर है, बल्कि यह इस्लामी रियासत का काम है कि वो तकफ़ीर का फ़ैसला करे। लिहाज़ा किसी शख़्स के अन्दर ज़रा सा भी शिर्क का शाएबा नज़र आ जाए तो इसको मुशरिक क़रार दे देना और उसके साथ वो तर्ज़े अमल इख़्तियार करना जो मुशरिकीन के साथ है, यह सरासर ग़लू है। इस ग़लू ने ऐसी खेंचतान पैदा करदी है कि अब फ़रीक़ैन के माबैन मेल जोल (communication) नहीं रहा। तब्क़ात बिल्कुल जुदा हो गए हैं, एक दूसरे की बात सुनने और समझने के लिए कोई तैयार नहीं। देखिए अगर हमने

किसी मामले में अपने नफ़्स की ख़्वाहिश को अल्लाह تَبَارَكَ وَتَعَالَىٰ के हुक्म पर मक़्दम रखा तो हम हरगिज़ पसंद नहीं करते कि कोई हमें मुशरिक क़रार दे। इसी तरह हमें चाहिए कि इस तरह की नर्मी और रिआयत (concession) दूसरों को भी दें, बल्कि अपने से ज़्यादा दें।

मुख़्तसिर यह के मज़म्मत लाज़िमन की जाए, इसमें मज़ाहनत हरगिज़ ना हो, लेकिन किसी को मुशरिक क़रार देकर उससे क़तअ ताल्लुक़ कर लेना, यह बहुत बड़ा फ़ितना है। इससे किसी भलाई को कोई उम्मीद नहीं, बल्कि नुक़्सान ही का अन्देशा है।

اقول قولی هذا واستغفرالله لی ولکم ولسائر المسلمین والمسلمات